डॉ. कमल नारायण आर्य

जन्म	: 30 जून 1950 केसरा (पाटन) जि. दुर्ग (छ.ग.) (ननिहाल) स्मृमिशेष नानाश्री रामलाल–वेदवतीजी।
प्राथ. शिक्षा	: पैतृकगांव–कापा (तुमगांव–बिरकोनी) जि. महासमुंद (छ.ग.) स्मृतिशेष पितामह दाउश्री प्राणनाथजी पोद्दार
माध्य. शिक्षा	: सेमरी–दरबार मोखली जि. दुर्ग (छ.ग.) (पिता की कार्यभूमि)
उच्च शिक्षा	: 1. विद्यावाचस्पति, श्रीमद्दयानन्द ब्राह्ममहाविद्यालय हिसार (हरियाणा–1974) 2. विद्या भास्कर, गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार) 1977 3. एम.ए. (संस्कृत), मेरठ विश्वविद्यालय मेरठ (उ.प्र.) 1980 4. वेदाचार्य (एम.ए. क्ला.) शा.दु.श्री. वै. संस्कृत महाविद्यालय, रायपुर 1984 5. पी.एच.डी. पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय – रायपुर (छ.ग.) 1997
परिजन	: पिताश्री स्मृतिशेष पन्नालाल, माताश्री जुगनबाई जी, अनुज प्रिय पं. नन्दकुमार आर्य–संतोष–विनय, अनुजा नन्दिनी एवं गायत्री भार्या शान्ता उर्फ आभा, पुत्र चि. वेदांशु कमल आर्य पुत्री–सुमेधा, जामाता – संजय, दौहित्र चि. सुयश
सम्प्रति	: 37 वर्षों से वेदप्रचार आर्य पौरोहित्य आदि कार्य जारी है। पूर्व आचार्य, यज्ञोपैथी सेण्टर, गायत्री हॉस्पिटल, रोहिणीपुरम् – रायपुर संस्थापक आचार्य, छत्तीसगढ़ आर्ष गुरुकुल, नवागाँव (झांझ) नया रायपुर से विस्थापित ग्राम–जांगड़ा (मुड़पार) व्हाया–हथबन्द जि. रायपुर। संस्थापक सदस्य, आर्य प्रतिनिधि सभा छ.ग., दीनदयाल उपाध्याय नगर रायपुर संचालक, वेद–परिसर–आर्य नगर बिहावबोड़ (भेण्डरवानी) जि. राजनांदगांव संस्थापक – विराट् सिस्टम्स (कम्प्युटर कं.) संचालक – वेदांशु कमल आर्य दीनद्याल उपाध्याय नगर, रायपुर (छ.ग.)
कृति	: 1. वैदिक धर्म महान् जग में (ट्रैक्ट) 1983 2. वैदिक शिक्षा विवेचना (लघुशोध प्रबन्ध–संस्कृत) 1984 3. आर्य विवाह क्या क्यों कैसे (ट्रैक्ट 1987) 4. देवकाव्य (वैदिक वाङ्मय चित्र) 1988 5. स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती का जीवन दर्पण 1994 6. पर्यावरण एवं प्रदूषण : वैदिक वाङ्मय में (शोध ग्रन्थ प्रकाशित) 1998 7. प्रदूषण युग में हवन हीं परम धर्म है क्योंकि (पत्रक) 1999 8. यज्ञो हि परमो धर्मः (ट्रैक्ट) 2003 9. स्वामी सुकर्मानन्द सरस्वती की जींवनी 2006 10. यज्ञोपैथी (हवन से रोग निवारण) 2007 11. पर्जन्य वृष्टि यज्ञ : वैज्ञानिक प्रयोग 2010

निवास – वेदांशु निलय, ई–288 से. 4 दीनदयाल उपाध्याय नगर, रायपुर
पी.एम.टी. हॉस्पीटल के सामने एम.आईजी. 56, 57, 58 के पीछे

यज्ञोपैथी

डॉ. कमल नारायण आर्य

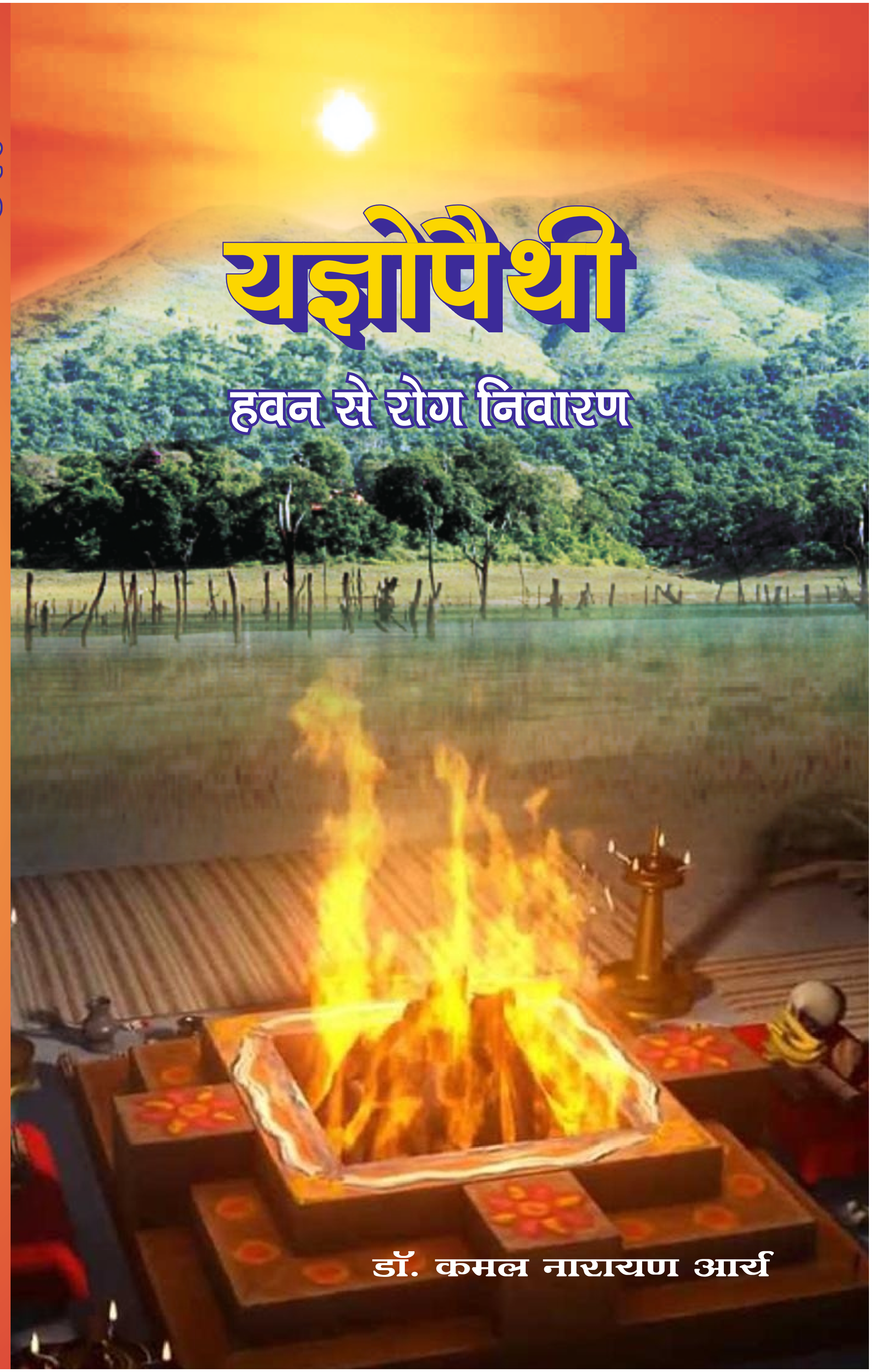

यज्ञोपैथी

हवन से रोग निवारण

डॉ. कमल नारायण आर्य

।। .... नमः शिवाय च शिवतराय च ।।

आर्य समाज पवनी (सारागांव) जिला रायपुर द्वारा वर्ष 1987 में आयोजित यजुर्वेद पारायण महायज्ञ में ब्रह्मा पूज्य स्वामी दिव्यानन्द के चरणों में बैठ यज्ञोपवीत से उपनीत इस किशोर को वेदमार्ग में दीक्षित कराया। दीक्षा देकर ब्रह्माजी ने पुरोहित पं. कमल नारायण आर्य को संकल्पित कराया कि इस शिव को शिवतर बनाने हेतु वैदिक शिक्षा व संस्कार दिलाना। संकल्पानुसार मेट्रिक पास ग्रामीण युवक को अपने सानिध्य में रखकर पौरोहित्य सिखाना प्रारम्भ किया। साथ ही साथ स्नातक और स्नातकोत्तर शिक्षा भी दिलाई गई। सद्गृहस्थी पं. शिवकुमार श्रीमती दीप्ति आर्य को दो पुत्रियाँ सुधा एवं मेधा हैं।

जन्म :– 20 अक्टूबर, 1967 को ग्राम–पवनी, जिला–रायपुर में पिता श्री गोविन्दराम वर्मा, माता श्रीमती फूलकुँवर वर्मा के घर हुआ।

शिक्षा :– रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर से संस्कृत में एम. ए.।

पं. कमलनारायण वेदाचार्य के सानिध्य में वैदिक संस्कारों का प्रशिक्षण प्राप्त किया। आचार्य वेदभूषण जी (हैदराबाद) के द्वारा आयोजित तीस दिवसीय वैदिक पुरोहित प्रशिक्षण शिविर देहरादून में प्रशिक्षण प्राप्त किया। स्वामी सत्यपति जी महाराज के सानिध्य में गुरुकुल आमसेना, नागपुर व रोजड़ में क्रियात्मक योग प्रशिक्षण प्राप्त किया। योगऋषि स्वामी रामदेव जी के सानिध्य में योग विज्ञान शिविर हरिद्वार में प्रशिक्षण प्राप्त योगशिक्षक है।

कार्य :– 1990 से पौरोहित कार्य कर रहे हैं। आर्यसमाज खेल बाजार, बड़ा बाजार (पानीपत) एवं आर्यसमाज हाँसी (हरियाणा) में पौरोहित्य वेद प्रचार एवं शैक्षणिक संस्थानों में धार्मिक शिक्षा का अध्यापन किया। वर्तमान में आर्यसमाज, दयानन्द भवन, मंगलवारी बाजार, सदर, नागपुर में 1993 से पुरोहित का कार्य कर रहे हैं। सुयोग्य पुरोहित एवं कुशल वक्ता से वैदिक संस्कारों हेतु उपरोक्त पते व मो. 09423635655 पर संपर्क कर सकते हैं।

लेखन :– विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में आपके लेख प्रकाशित होते रहते हैं। पंत्रमहायज्ञ महिमा, ओ३म् महिमा, महापुरुषों की दृष्टि में महर्षि दयानन्द एवं दैनिक अग्निहोत्र, महर्षि दयानन्द रचित वैदिक नित्यकर्म विधि पंचमहायज्ञ आदि पुस्तिकाओं का सम्पादन कर उन्हें आपने प्रकाशित करवाया है। पर्जन्य वृष्टि यज्ञ का भी प्रकाशन व सम्पादन करवाया है।

इस कृति के प्रकाशन व सम्पादन में योगदान सराहनीय है।

– कमलनारायण आर्य

प्रदूषण युग में हवन ही परम धर्म है, क्योंकि

हवन से देवताओं की पूजा, उनके गुणों में वृद्धि व परस्पर सत्संगति होती है.
हवन से पृथ्वी, जल, वायु और अन्न आदि के विकार दूर होते है.
हवन से पेड़ पौधे लगाने तथा पशु पालन की प्रेरणा मिलती है.
हवन से प्रकृति में भैषज्य (औषध) तत्वों को भरा जाता है.
हवन से दुःख, दारिद्र्य और शोक सन्ताप दूर होते है.
हवन से पर्यावरण शुद्ध, पुष्ट एवं सुगन्धित होता है.
हवन से मनुष्य स्वस्थ्य और प्रसन्न होता है.
हवन से मानव-धर्म का परिपालन होता है.
हवन से पर्यावरण का प्रदूषण दूर होता है.
हवन से सात्विकता का विस्तार होता है.
हवन से हमारा योगक्षेम सिद्ध होता है.
हवन से प्राणवायु की वृद्धि होती है.
हवन से रोगों का निवारण होता है.
हवन से बुद्धि, परिष्कृत होती है.
हवन से वर्षा की वृद्धि होती है.
हवन श्रेष्ठतम कर्म है.
हवन कामधेनु है.
हवन विष्णु है.

यज्ञो हि परमो धर्मः

हवनं प्रति गमनं Back to Homa हवन की ओर चलें

Heal The Environment Perform Agnihotra

डॉ. कमलनारायण वेदाचार्य

।। ओ३म् ।।

यज्ञोपैथी

(हवन से रोग निवारण)

डॉ. कमलनारायण आर्य
वेदाचार्य. एम. ए. पीएच डी
वैदिक पर्यावरणविद्
मो. - 09407-697657

प्रकाशक
पर्यावरण परिष्कार परिषद्
नागपुर (महाराष्ट्र)

❖ प्रकाशक

पर्यावरण परिष्कार परिषद्

38, नटराज सोसायटी, आर्य नगर, कोराडी रोड, नागपुर

मो. 09423635655

❖ वितरक

आर्य समाज, दयानन्द भवन, सदर, नागपुर (महाराष्ट्र)

आर्य समाज, माडल टाउन, पानीपत (हरियाणा)

आर्य समाज, रानी बाग, नई दिल्ली

❖ © लेखक

❖ तृतीय संस्करण 2019

❖ संख्या 1000

❖ सहयोग राशि 150 रू.

❖ मुद्रक

दत्तसन्स प्रिंटिंग प्रेस

सदर, नागपुर

फोन : 0712–2524426

❖ शब्द संयोजक : वेदाँशु कमल आर्य

स्मृति के झरोखे से

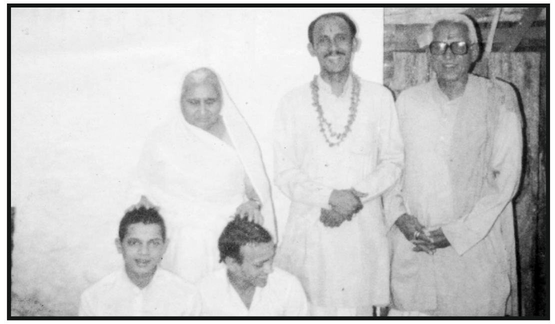

माता कौशल्या देवी, कमलनारायण, पं बंशीलाल उपाध्याय
बैठे हुए : ब्र. सत्य सिंधु, सत्येन्द्र शास्त्री
दि. : 04-03-1985

पं नीलकण्ठ शास्त्री, स्वामी सेवानन्द, कमलनारायण,
पं सुखराम आर्य, पं बंशीलाल उपाध्याय, श्री ओमप्रकाश नरूला,
1985

यज्ञ के ब्रह्मा स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती जी
एवं शिवकुमार आर्य अपने माता पिता तथा परिजनों के साथ

प्रसाद

मा प्रगाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः । मान्तस्थुर्नो अरातयः ।।

अर्थ - हम उपासक लोग सन्मार्ग तथा यज्ञकर्म से दूर न जावें । हमारे बीच अदानशील लोग न रहें ।

यज्ञ वैदिक संस्कृति का प्राण है, यज्ञ के द्वारा ही हमारे समस्त कार्य सफल व सिद्ध होते हैं । आरोग्यता व दीर्घायु की प्राप्ति होती है ''आयुर्यज्ञेन कल्पताम्'' यज्ञ पकृति का प्राणायाम है यज्ञाग्नि में विभिन्न जड़ीबुटियों औषधियों की आहुति देकर अनेक रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है जिसकी जानकारी पर्यावरण विद् डॉ. कमलनारायण जी ने वैदिक ज्ञान का शोध एवं यज्ञों में प्रयोग करके प्राप्त की है जिससे अनेक लोग लाभान्वित हुए हैं । उन समस्त जानकारियों को ''हवन से रोग निवारण'' **यज्ञोपैथी** के नाम से प्रकाशित किया जा चुका हैं ।

डॉ. कमलनारायण जी वेदाचार्य उच्च कोटि के चिन्तक एवं मनीषी हैं, आपने पी. एच.डी. “पर्यावरण एवं प्रदूषण वैदिक वाङ्मय में” विषय पर किया है । सरल एवं सौम्य व्यक्तित्व के धनी वेद, दयानन्द एवं आर्य समाज के प्रति अत्यंत श्रद्धावान् आचार्य श्री अपने जीवन को वेद एवं वैदिक संस्कृति के प्रचार हेतु समर्पित कर दिया हैं । आपने आर्य समाज सदर में वेद प्रचार सप्ताह,. ऋषि बोध दिवस तथ अनेकानेक पर्वो पर पधारकर नागपुर वासियों का मार्गदर्शन किया है । इससे पूर्व डॉ. कमलनारायण जी द्वारा लिखित तथा पर्यावरण परिष्कार प्रकाशन नागपुर द्वारा प्रकाशित ''पर्जन्य वृष्टि यज्ञ'' पुस्तक का विमोचन भी आर्य समाज दयानन्द भवन सदर में ही हुआ था ।

यज्ञोपैथी के प्रथम संस्करण की समाप्ति पर आर्य समाज दयानन्द भवन ने पूज्य आचार्य जी के वर्षों के श्रम, तप व शोध से प्राप्त ज्ञान ''यज्ञोपैथी'' से और अधिकाधिक लोग लाभानिव्त होंवे, इस उद्देश्य को ध्यन में रखते हुए, इस अमूल्य ग्रन्थ के प्रकाशन में सहयोग करने का निश्चय किया । आर्य समाज के समस्त पदाधिकारियों कार्यकारिणी एवं सभी सदस्यों की यही हार्दिक कामना हैं कि रोगों से रहित व सुखों से पूरित करने वाला यज्ञोपैथी घर-घर पहुंचे ।

प्रभात नायक	धनलाल शेन्दरे	श्रीप्रकाश शिवहरे	रामलाल आर्य
प्रधान	मन्त्री	कोषाध्यक्ष	पुस्तकाध्यक्ष

एवं

आर्य समाज दयानन्द भवन सदर नागपुर के समस्त आर्य जन

प्रकाशकीय

पथिक वही है जिसे पथ की पहचान हो । इधर-उधर भटकने वाले सच्चे राही नहीं होते । अनेकों मार्गों के बीच सीधे और सरल मार्ग का चयन, मंजिल पाने में सहायक होता है । धर्म एवं अध्यात्म में सबको साधने व पाने की ललक मृगतृष्णा है । एक सत्य को साधने वाले सब कुछ पा लेते हैं । इसी प्रकार रोग निवारण और स्वास्थ्य प्राप्ति के लिये संसार में अनेकों पैथियों का प्रचलन है । सभी चिकित्सा पद्धतियाँ अपने अपने ढंग से इलाज करती हैं, इनमें कुछ दुरुह, कुछ कष्ट साध्य, कुछ महंगे, कुछ सस्ते तो कुछ पार्श्व प्रभाव (साइड इफेक्ट्स) व पश्च प्रभाव (आफ्टर इफेक्ट्स) वाली हैं । कुछ चिकित्सा-विधि तुरंत प्रभावी है तो कुछ विलंबित । आधुनिक आतंकी युग में शल्य क्रिया सर्जरी चिकित्सा अपरिहार्य हो गई है । इनमें किसी एक पैथी में ठहर कर चिकित्सा-लाभ प्राप्त करना विवेकपूर्ण कार्य है ।

पथ (वैदिक) और पैथी (यज्ञ) दोनों ही लक्ष्य प्राप्ति के साधन हैं, जिनसे साध्य की सिद्धि होती है । साध्य भले ही सत्य एवं आरोग्यता की प्राप्ति हो पर दोनों का परिणाम है आनन्द की उपलब्धि ।

यज्ञोपैथी वह वैदिक चिकित्सा पद्धति है, जो हर दृष्टि से आनन्दप्रद है । डॉ. कमलनारायण, आर्यजगत् के लब्ध प्रतिष्ठित वैदिक पर्यावरण चिकित्सक द्वारा रचित यज्ञोपैथी नामक रचना का प्रकाशन जनकल्याणकारी हो यही अभिलाषा है ।

- आचार्य नन्दकिशोर
संस्थापक/अधिष्ठाता
छत्तीसगढ़ आर्ष गुरूकुल
रायपुर (छ.ग.)

द्वितीय संस्करण में महर्षिदयानंद की यज्ञ सम्बंधी वैज्ञानिक भविष्यवाणियाँ संदर्भ सहित तथा रोगानुसार हवन-धूप परिशिष्ट में दिये गये हैं। इस संस्करण के प्रकाशन में सहयोगियों का हार्दिक आभार मानते हैं। **– कमल** **(सित. 2012)**

शुभानुशंसा

आचार्य कमलनारायण आर्य द्वारा संपादित यज्ञोपैथी (हवन से रोग निवारण) सर्वोपकारी कृति है । यह सर्वविदित है कि यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है, प्रत्यक्ष कामधेनु है, आरोग्यकारक, आयुधारक तथा सर्वविधकल्याणकारक है । यज्ञ से धर्म अध्यात्म एवं व्यक्तित्व विकास के अतिरिक्त समष्टि का कल्याण ही सर्वोपरि दिखाई देता है । ब्रह्माण्ड के अनुदान से पिण्ड (शरीर) का संचालन होता है अतएव जगत् को अनुकूल करने वाले वैज्ञानिक कार्य आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है । यद्यपि आज प्रकृति से छेड़छाड़, प्राकृतिक खोज तथा भौतिक विकास का नाम विज्ञान हो गया है, जिससे संरक्षण कम और विनाश अधिक हो रहा है तथापि यज्ञ वह विज्ञान है जो प्रकृति और प्राणी दोनों का कल्याण करता है ।

गायत्री हॉस्पीटल एवं रिसर्च सेन्टर रायपुर में विगत 9 वर्षों से डॉ. कमलनारायण आर्य के आचार्यत्व में यज्ञौपैथी का पुनीत अनुष्ठान अनवरत अबाधगति से चल रहा है जिसका सकारात्मक परिणाम मिल रहा है ।

यज्ञोपैथी नामक यह रचना अभी सैद्धान्तिक प्रस्तुति है । सत्परिणाम की सिद्धि प्रयोग के पश्चात् ही हो सकता है । रोगग्रस्त लोग एलोपैथी तथा आयुर्वेदिक आदि उपचार कराते हुए भी हवन से रोग निवारण के लिये यज्ञोपैथी का प्रयोग कर सकते हैं ।

जैसे यज्ञ में आहुति से यज्ञ का प्रभाव आसपास व्यापक हो जाता है वैसे ही लघुप्रयास जन-जन में प्रसारित होकर विराट् हो जाये यही कामना है ।

- डॉ. अरूण मढ़रिया
एम.एस.हड्डी रोग विशेषज्ञ
डॉयरेक्टर,
गायत्री ग्रुप ऑफ हॉस्पीटल्स, रायपुर, दुर्ग, भिलाई (छत्तीसगढ़)

शुभकामना

सभी अपने जीवन को दुःखमुक्त करना चाहते हैं । रोगी जीवन या शरीर कभी भी सुखी नहीं हो सकता । रोग शमन के लिए अनेक विधियों, प्रविधियों की खोज की गई है । आज वैज्ञानिक शोधों से पता चला है कि रोग की अनेक पद्धतियाँ रोग शमन या उपचार के लिए जो मार्ग या औषधियों की खोज कर रहीं हैं, वहीं अनेक रोगों का जनक बन रहा है । चिकित्सा विधि में औषधियों का साइड इफेक्ट, आज साधारण जन को भयभीत कर रहा है । अब रोग से अधिक रोगोपचार की विधियाँ हमें भयभीत कर रही हैं ।

ऋषियों द्वारा खोजी गई आयुर्वैदिक चिकित्सा आज सम्पूर्ण विश्व में प्रतिष्ठित हो रहा है । औषधियों के सेवन की अनेक विधियाँ हैं - कुछ जल के साथ ली जाती हैं और कुछ भोजन के अंग बन जाती हैं । कुछ औषधियों को सीधे रक्त में भी प्रवेश कराया जाता है । आर्यसमाज के संस्थापक और महान समाज सुधारक ऋषि दयानन्द सरस्वती ने वायु को औषधयुक्त करके नीरोग होने तथा सुख प्राप्त करने का उपदेश अनेकत्र दिया है । संस्कार विधि तथा वेदभाष्य में ऋषि ने यज्ञ में अनेक औषधियों के प्रयोग का विधान किया है । आयुर्वेद में औषधियों के भस्म आदि का प्रयोग बहुत ही प्रसिद्ध है । यह भस्म निर्माण की विधि यज्ञ की प्रक्रिया का अनुसरण करती है । यज्ञ में प्रयुक्त आषधियाँ वायु के माध्यम से शरीर में प्रवेश करती है । यज्ञ वातावरण को औषधयुक्त बनाने का विज्ञान है ।

यज्ञोपैथी यज्ञ के उसी विज्ञान की एक अद्भुत खोज है । इस पुस्तक में ऋषि दयानन्द की यज्ञ सम्बन्धी वैज्ञानिक भविष्यवाणियों का संकलन भी है । यह पुस्तक हम सभी के भीतर यज्ञ के प्रति श्रद्धा और उत्पन्न करेगी और हमारा विश्वास दृढ होगा । यज्ञीय कर्मकाण्ड के मर्मत्न डॉ. कमल नारायण आर्य जी ने वर्षों शोध करके यह पुस्तक तैयार की है । इस पुस्तक में अनेक औषधियों के गुण, धर्म का वर्णन है । यज्ञोपैथी ने यज्ञ को सम्पूर्ण चिकित्सा पद्धति के रूप में स्थापित किया है ।

मैंने पूज्य डॉ. कमल नारायण आर्य जी के सान्निध्य में अनेक यज्ञ की विधियों को देखा है और सहभागी भी बना हूँ । आपने यज्ञ के विराट स्वरुप परतपपूर्वक गहन शोध किया है । ऋषि दयानन्द द्वारा वर्णित यज्ञीय विषय को समझने में यह पुस्तक हमारे लिए सहायक सिद्ध होगी । यज्ञोपैथी का अनुकरण करके हम सब अपने जीवन को निरामय बना सकते है । इस महनीय कार्य के लिए लेखक की जितनी प्रशंसा की जाए उतनी कम है ।

डॉ. अजय आर्य, रायपुर

दो शब्द

यद्यपि यज्ञ शब्द बहुत व्यापक है, जिसका अर्थ है देवताओं की पूजा, संगतिकरण तथा दान तथापि यज्ञ शब्द अग्निहोत्र अथवा हवन (होम) के लिये सर्वत्र प्रचलित हो गया है । मानव को यज्ञीय प्रेरणा सर्वप्रथम ईश्वर से मिली क्योंकि सृष्टिकर्त्ता ने स्वयं एक शाश्वत यज्ञ का दिव्य आयोजन किया हुआ है । ऋग्वेदीय पुरूष सूक्त के अनुसार सृष्टि-यज्ञ में जिस पुरूष की प्रेरणा से देवताओं ने हवि के द्वारा यज्ञ का विस्तार किया उसमें वसन्त ऋतु-घृत, ग्रीष्म-समिधा तथा शरद-सामाग्री की आहुति है । याज्ञिकों के अनुसार, यज्ञ के तीन अंश हैं संकल्प, मंत्र और आहुति । आहुति के तीन अंग है समिधा, घृत और सामग्री (हवि) ।

कालक्रम की दृष्टि से वैदिक काल का उत्तरार्ध व ब्राह्मणकाल बृहद् यज्ञों के लिये प्रसिद्ध था । यही कारण है कि कुछ विद्वान् उसे यज्ञकाल कहते हैं । ब्राह्मण ग्रन्थों का तो मुख्य विषय ही यज्ञीय प्रक्रियाओं की वैज्ञानिक व्याख्या करना है । तब दैनिक, पाक्षिक, मासिक, चातुर्मासिक, षण्मासिक एवं वार्षिक यज्ञ किये जाते थे । बासन्ती (होली) और आषाढ़ी (दीवाली) के अवसर पर नये अन्नों द्वारा यज्ञ होते थे । दर्शेष्टि तथा पौर्णमासेष्टि तो विशेष रूप से किये जाते थे । श्रौत एवं स्मार्त भेद से २१ प्रकार के यज्ञों का विधान मिलता है । उपनिषदों में भी इसी प्रकार के प्रसंग मिलते हैं । ऋतु परिवर्तन के समय आने वाली बीमारियों की रोकथाम के लिये भैषज्य यज्ञों के करने का विशेष उल्लेख किया गया है, जिन्हें चातुर्मास्य होम कहा गया है ।

रामायण तथा महाभारत काल में यज्ञों का प्रचलन सर्वविदित है । विदेशों में भी यज्ञ किसी न किसी रूप में होते रहने के प्रमाण मिलते हैं । चीन और जापान में यज्ञ को घोम कहते हैं, वहाँ मन्दिरों में आज भी धूप जलाने की प्रथा है । ईरान के यहूदियों में यज्ञों का बहुत प्रचलन था । वे यज्ञ कुण्ड को कैर कहते हैं, यहूदी अब भी घर में पवित्र अग्नि (आतिश - ए - बहराम) प्रज्ज्वलित रखते हैं । अग्नि में हवि प्रदान करना भारतीय एवं ईरानियों की प्रथा है जो ग्रीस तथा रोम में भी पायी जाती है । रेड इण्डियनों और मिश्र में भी यज्ञ का प्रचार था । आयरलैण्ड व दक्षिणी अमरीका में महामारी की रोकथाम के लिये अग्नि जलाई जाती थी । यही प्रथा गत शताब्दी तक स्काटलैण्ड में भी थी । मुसलमान भी लोभान और उदबत्ती जलाते हैं । ईसाईयों में आग से बपतिस्मा को पूर्ण माना गया है, पानी से मन फिराव का बपतिस्मा होता है (द्र. नया नियम मत्ती ३/११) सिख और जैनी भी धूप जलाते हैं । आयुर्वेद में धूप (धूनी) चिकित्सा का प्रयोग उपलब्ध है ।

वैदिक वांङ्मय में पर्यावरण एवं प्रदूषण सम्बन्धी अनुसंधान तथा ३५ वर्षों के पौराहित्य जीवन में असंख्य संस्कारों - यज्ञों को सम्पन्न कराते हुए और विगत ०७ वर्षों से यज्ञोपैथी सेन्टर - गायत्री हॉस्पीटल एवं रिसर्च सेन्टर रायपुर में हवन से रोग निवारण की दिशा में प्रयोग करते हुए अनुभव हुआ कि जन सामान्य को भी यज्ञ के चिकित्सकीय पक्ष से अवगत कराया जाय अतः अथर्ववेद के तद्विषयक सूक्तों का संग्रह कर यह यज्ञोपैथी नामक लघुग्रन्थ तैयार किया गया है, इसकी प्रस्तुति में जिन - जिन याज्ञिक आचार्यों, वैज्ञानिक व्याख्याकारों एवं वैदिक विद्वानों से मार्गदर्शन, प्रेरणा अथवा उद्धरण प्राप्त किया गया है, उन सभी का कृतज्ञता पूर्वक आभारी हूँ ।

इस ग्रन्थ में देवयज्ञ (अग्निहोत्र) के अन्तर्गत क्रमशः नित्य (दैनिक), नैमित्तिक (विविध रोग निवारक), प्रायश्चित और पूर्णाहुति आदि मंत्रों का विषयानुसार अर्थपूर्वक संग्रह किया गया है । कर्मकाण्ड के अन्य पहलुओं पर विचार नहीं किया गया है । चिकित्सा-प्रयोजन के लिये ही प्रमुखतः ग्रन्थ का प्रणयन हुआ है । इसलिये विज्ञजनों से विनम्र प्रार्थना है कि इसका अनुष्ठानात्मक विश्लेषण नहीं करेंगे । सुधार-भावना से त्रुटि की ओर कोई ध्यान दिलायेंगे तो संशोधन कर दिया जायेगा ।

यज्ञ प्रेमियों का सेवक
डॉ. कमलनारायण आर्य

विषय सूची

I. देवयज्ञ (अग्निहोत्र) व्याख्या भाग 01

01. आचमन 02
02. अङ्गं स्पर्श 04
03. ईश्वरभक्ति मन्त्र 05
04. यज्ञोपवीत 09
05. अग्नि प्रणयन 10
    5/1. दीप जलाना 11
    5/2. अग्न्याधान मन्त्र 12
06. अग्नि–प्रदीपन 12
07. समिदाधान 13
08. घृताहुति 15
09. जलसिंचन 17
10. आघारावाज्य भागाहुति 18
11. दैनिक आहुति 19
12. नित्य आहुति मन्त्र 20
13. देवयज्ञ (अग्निहोत्र) मन्त्र भाग 24

II. यज्ञोपैथी 28

01. सर्वरोग निवारक सूक्त एवं हवन सामग्री 30
02. हृदय रोग निवारक सूक्त एवं हवन सामग्री 50
03. रक्तजरोग निवारक सूक्त एवं हवन सामग्री 55
04. अस्थिजन्य रोग निवारक सूक्त एवं हवन सामग्री 61
05. मानस रोग चिकित्सा एवं हवन सामग्री 65
    5/1. ईर्ष्या निवारक सूक्त 66
    5/2. शोक–मोह निवारक सूक्त 66
    5/3. क्रोध निवारक सूक्त 67
    5/4. दुः ष्वप्ननाशन सूक्त 69
    5/5. उन्माद नाशक सूक्त 69
    5/6. वंशानुगत मानस रोग निवारक सूक्त 70
06. क्षयरोग निवारक सूक्त एवं हवन सामग्री 75
07. स्त्री रोग निवारक सूक्त एवं हवन सामगी 81
    7/1. वीर प्रसूति सूक्त 82
    7/2. पुंसवन सूक्त 84
    7/3. गर्भदोष निवारक सूक्त 85
    7/4. गर्भह्रास निवारक सूक्त 86
    7/5. सुख–प्रसूति सूक्त 87
08. केश (बाल) रोग निवारक सूक्त एवं हवन सामग्री 92
09. कास (खांसी) निवारक सूक्त एवं हवन सामग्री 94
10. श्वास रोग निवारक सूक्त एवं हवन सामग्री 96
11. तक्मा (ज्वर, मलेरिया, फ्लू आदि) रोग नाशक सूक्त एवं हवन सामग्री 99
12. वातव्याधि निवारक सूक्त एवं हवन सामग्री 106
13. बवासीर (अर्श), भगन्दर रोग निवारक सूक्त एवं हवन सामग्री 110
14. नेत्र रोग निवारक सूक्त एवं हवन सामग्री 112
15. एड्स (ओजक्षय, उरःक्षत) की वैदिक चिकित्सा एवं हवन सामग्री 115
16. मृत्युञ्जय सूक्त 118
17. अमावस्य (दर्श) एवं पौर्णमासी सूक्त 121
18. शान्ति सूक्त 132
19. प्रायश्चित्त मन्त्र 136
20. पूर्णाहुति मन्त्र 137
21. यज्ञभस्म चिकित्सा 138
22. यज्ञ प्रार्थना 141
23. सर्व मंगल कामना 141
24. शान्तिपाठ मन्त्र 142
25. यज्ञोपैथी का साप्ताहिक कार्यक्रम 149

अथ गुरूमन्त्रः
(यजुर्वेद 36/3)

ऋषि – विश्वामित्र। देवता – सविता। छन्द – देवी बृहती निचृत् गायत्री।
स्वर–मध्यम , षड्ज।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः ।
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

प्राण प्रदाता, संकट त्राता, हे सुखदाता ओम् ओम् ।
सविता माता पिता वरेण्यं भगवन् भ्राता ओम् ओम् ।।
तेरा शुध्द स्वरुप करें हम धारण धाता ओम् ओम् ।
बुद्धि प्रेरित कर सुकर्म में, विश्व विधाता ओम् ओम् ।।

रूद्र (दुःख, भय, रोग निवारक) मन्त्र
ऋग्वेद 7/59/12

ऋषि – वसिष्ठ। देवता–रूद्र। छन्द – अनुष्टुप्। स्वर – गान्धार।

ओ३म् त्र्यम्बकंयजामहे सुगन्धिंपुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमाऽमृतात् ।।

उत्पादक पालक तारक, पुष्टि प्रदाता ईश ।
उसकी स्तुति हम करें सब, मुक्ति देत जगदीश ।।
खरबूजा पक लता बन्ध से, हो जाता ज्यों मुक्त ।
त्यों हम त्यागें देह यह, मोक्ष समय सुख युक्त ।।

पं. बाबुलाल जोशी, इन्दौर
(शान्ति पाठ मंत्र के काव्यानुवादक)

देवयज्ञ (अग्निहोत्र)
व्याख्या भाग

पर्यावरण की यथा स्थिति प्राणीमात्र के लिये ही नहीं वरन् समस्त विश्व के अस्तित्व रक्षार्थ आवश्यक है । अपने स्वरूप में अवस्थित प्रकृति सबकी पोषिका-पालिका है इसीलिये इसको अदिति माता कहा गया है । भौतिक दृष्टि से प्राकृतिक तत्वों को देव कहते है जो प्रतिक्षण प्राणियों का हित सम्पादन करते हैं । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, ऋतु, औषधि - वनस्पति आदि के अनुदान से हमारा जीवन चलता है । हम ऋणी हैं उन सबके जिनसे हमारा जीवन चलता है हम ऋणी हैं उन सबके जिनसे अनुप्राणित होते हैं । बुद्धिमानों का काम है कि वह भी जगत् का उपकार करें क्योंकि जो संसार का जितना हित करता है वह कुदरती व्यवस्था से उतना सुख और आनन्द प्राप्त करता है । पर्यावरण हमारा भगवान है क्योंकि भगवान शब्द का निर्माण प्रकृति के पांच महाभूतों के नाम पर है । जैसे भ=भूमि, ग=गगन, व=वायु, अ=अग्नि, न=नीर । भगवान की भक्ति यही है कि हम पर्यावरण को बिगड़ने न दें अथवा प्रदूषण दूर करने के सम्पूर्ण प्रयासों का आश्रय ग्रहण करें ।

आज जब भस्मासुर की तरह प्रदूषण अपने जनक आदमी को ही भस्म करने तेजी से बढ़ रहा है तब विष्णु रूपयज्ञ ही (यज्ञो वै विष्णुः) उससे रक्षा कर सकता है । यज्ञों के द्वारा प्रकृति में भैषज्य (औषध) तत्वों को भरा जाता है, जिससे पर्यावरण शुद्ध, पुष्ट एवं सुगन्धिमय होता है । यज्ञों के अनुष्ठान से हमें पेड़ पौधे लगाने तथा पशुपालन की प्रेरणा मिलती है क्योंकि हम घी, सामग्री इन्हीं से प्राप्त करते हैं ।

यज्ञों में अग्निहोत्र महत्वूपर्ण माना गया है ।

मुखं वा एतद्यज्ञानां यदग्निहोत्रम् ।

(शतपथ ब्राह्मण 14.3.20.02)

- यह अग्निहोत्र यज्ञों का मुंह है ।

अग्निहोत्र में प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल हवनकुण्ड की अग्नि में गाय के घी तथा जड़ीबूटीयों औषधियों से अग्नि एवं सूर्य के लिए स्वाहाकारपूर्वक आहुतियाँ दी जाती है । ऐसा करने पर अश्वमेध का फल

मिलता है । इसीलिये इसको जरामर्यसत्र कहा जाता है अर्थात् जो आजीवन किया जाय, जीवन में एक भी दिन जिसका त्याग न हो । इस छोटे से अग्निहोत्र को देवयज्ञ भी कहते हैं । देवताओं की अनुकुलता के लिये किया जाने वाला हवन, दैनिक अनुष्ठान के पांच कर्त्तव्य कर्मो में एक आवश्यक वैयक्तिक धर्म है ।

प्राचीन महर्षियों ने अग्निहोत्र (हवन) की एक अत्यन्त छोटी विधि प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति को हर रोज करने के लिये दी है, जिसको सम्पन्न करने में 10 — 15 मिनट का समय ही लगता । मुख्य रूप से 16 आहुतियां छोटे-छोटे मन्त्रों से दी जाती है । यज्ञ में मन्त्रों के उच्चारण के साथ क्रिया की जाती है । क्रिया करना ही कर्मकाण्ड का अंग है । बिना मन्त्रोच्चारण किये पदार्थों को अग्नि में जला देने से वह यज्ञ के स्वरूप को प्राप्त नहीं करता है और न वह उस महान् लाभ को भी उत्पन्न करने में उतना समर्थ हो सकता है । इसीलिये विधिवत् अग्निहोत्र करने से ही यथोचित लाभ होता है ।

1. आचमन

हवन की प्रथम क्रिया आचमन आंतरिक पवित्रीकरण के लिये है । तांबा, चांदी, या सोना के कटोरीनुमा बर्तन में पहले से रखे हुए जल में से दाहिने हाथ की हथेली में तर्जनी अंगुली को अंगूठे के मूल में लगाकर बनाये ब्रह्म तीर्थ में कुछ बूंदें लेकर नीचे के ओंठ से लगाकर हवा के साथ पानी को पी लेना आचमन कहा जाता है । यौगिक दृष्टि से शारीरिक निरोगता तथ मानसिक शक्ति की प्राप्ति के लिये जल को चूसकर पीना लाभप्रद है क्योंकि उस जल में मस्तिष्क की अमृत ग्रंथि (पिट्यूटरी ग्लैण्ड) में से रस का स्राव काक - तालु मार्ग से मुख में आकर मिल जाता है, जो कंठ कूप में अवस्थित विशुद्धिचक्र (करोटिड प्लेक्सिस) को प्रभावित करता हैं जिससे सात्विकता विकसित होती है । आचमन रीति से जल को पीना रक्त पुष्टि का कारण बनता है । शतपथ ब्राह्मणकार महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं **(तेन पूतिरन्तरतः)** आचमन से आन्तरिक पवित्रता होती है ।

तीन बार आचमन का तात्पर्य है :- मन-वचन-कर्म की एकता से अपने शरीर में सत्य, यश और श्री की अभिवृद्धि ।

1. आध्यात्मिक (शारीरिक व मानसिक)
2. आधिभौतिक (दूसरे प्राणियों से) एवं
3. आधिदैविक (प्राकृतिक प्रकोप)

इन तीनों दुःखों से बचने की कामना । शरीर, मन और आत्मा के लिए क्रमशः सुख, शान्ति एवं आनन्द को पाने की अभिलाषा है ।

जल सृष्टि का सार तत्व है । ऋग्वेद के अनुसार जल उत्कृष्ट माता है क्योंकि इससे पर्यावरण का निर्माण ही नहीं वरन् पालन भी होता है । **जीवधन्या इमा आपः** इस मन्त्रांश के द्वारा जल को जीवन का धारक कहा गया है । पानी तीव्र औषधि है जिससे शारीरिक आरोग्यता प्राप्त होती है ।

शारीरिक निरोगता के लिये जैसे जल साधन है वैसे ही मानसिक आरोग्यता के लिये ईश्वर भक्ति । ईश्वर से मेल करने पर मानसिक रोगों का नाशक आत्मबल प्राप्त हुआ करता है । आत्मबल से सम्पन्न मनुष्य मानस रोग से ग्रस्त नहीं होते इसलिये हवन में मन्त्रपाठ किया जाता है । तैत्तिरीय आरण्यक ग्रन्थ के चुने हुए तीन मन्त्रों का पाठ कर तीन आचमन किया जाता है :-

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।।1।।

हे सर्वरक्षक प्रभो ! मैं दृढ़ विश्वासपूर्वक सत्य जानता व कहता हूँ कि आपका अमर आनन्द नीचे का बिछौना अर्थात् संसार का आधार है ।

ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ।।2।।

हे सर्वरक्षक पिता ! मैं दृढ़ विश्वासपूर्वक सत्य जानता व कहता हूँ कि आपका अमर आनन्द ऊपर का ओढ़ना अर्थात् संसार का पालक है ।

ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ।।3।।

हे सर्वरक्षक प्रभो ! मैं सत्यनिष्ठा से प्रार्थना करता हूँ कि मुझमें वेदविद्या, शुभभावना, शोभा और ऐश्वर्य स्थित रहें ।

याज्ञिक प्रक्रिया में मन्त्रों के आरम्भ में ओ३म् मांगलिक भाव से

लगाकर पढ़ा जाता है । यह मन्त्र का भाग नहीं है । वेद एवं वैदिक विद्वानों के अनुसार परमात्मा का मुख्य और निज नाम ओ३म् ही है । इसी नाम में परमेश्वर के अन्य सभी नाम समाहित हैं । इसका शाब्दिक अर्थ है, हे सर्वरक्षक प्रभो । ओ तथा म् के बीच में अंकित अक्षर (३) उच्चारण के लिये नहीं है अपितु ओ पद को तिगुने स्वर से बोलने अर्थात् प्लुत उच्चारण का वाणी संकेतक है ।

2. अङ्ग स्पर्श

आचमन के बाद बाये हाथ ही हथेली पर थोड़ा जल लेकर दाहिने हाथ की मध्यमा और अनामिका (बीच की दोनों अंगुलियों को मिलाकर) से अंगूठा को लगाकर मृगी मुद्रा द्वारा जल से स्पर्श कर मन्त्रोच्चारण के बाद जिस-जिस अंग का नाम आये उस - उस अंग का स्पर्श करें ।

जल से इन्द्रियों के स्पर्श द्वारा बाहरी पवित्रीकरण किया जाता है क्योंकि मानसिक नीरोगता की प्राप्ति मन और इन्द्रियों की पवित्रता पर भी आश्रित है । स्वार्थ रहित सत्कर्मों से ही इन्द्रियों में सद्भावनायें उत्पन्न होकर पवित्रता आया करती है और फिर वे अपने स्वामी को मानसिक विकारों से मुक्त कराने में सहयोग दिया करती हैं । ईश्वर-भक्ति के द्वारा प्राप्त आत्म बल रूपी विद्युत् शक्ति से मन रूपी कण्डक्टर द्वारा इन्द्रियों में बहनेवाली सद्भावना रूपी धाराओं को सदा प्रचलित रखनी चाहिए ताकि इन्द्रियाँ, मन के अनुकुल रहती हुई अपना-अपना उचित कर्तव्य सम्पादित किया करें । वैदिक ऋषि अथवा योगी की दृष्टि में हमारी देह (काया) आठ चक्रों, नौ द्वारों वाली देवताओं अर्थात् इन्द्रियों की नगरी अयोध्या है । इन इन्द्रियों में दिव्यता बनी रहे इसलिये वाणी, नाक, आंख, कान, भुजा, पैर आदि इन्द्रियों का स्पर्श, मार्जन किया जाता है । इसे अंग न्यास भी कहते हैं । न्यास के लिये कर्मकाण्डीय ग्रन्थ पारस्कर गृह्यसूत्र के मन्त्रों का पाठ किया जाता है । यथा :-

ओ३म् वाङ्मआस्येऽस्तु ।।

(इस मन्त्र से मुख का स्पर्श करें)

हे रक्षक परमात्मा । मेरे मुख में पूर्ण आयु तक वाणीशक्तिसम्पन्न हो ।

ओ३म् नसोर्मे प्राणोऽस्तु ।।

(इससे नाक के दोनों छिद्रों का स्पर्श करें ।)

हे परमेश्वर । मेरी नासिका (नाक) में आजीवन प्राणशक्ति बनी रहे ।

ओ३म् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ।।

(इससे आँखों का स्पर्श करें ।)

हे देव मेरी आँखें पूर्ण आयु पर्यंत दिव्यदृष्टियुक्त हों ।

ओ३म् कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ।।

(इस मन्त्र से दोनों कान का स्पर्श करें ।)

हे रक्षक पिता मेरे कानों में सुनने की शक्ति बनी रहे ।

ओ३म् बाह्वोर्मे बलमस्तु ।।

(इससे दोनों भुजाओं का स्पर्श करें ।)

हे तेजरूप भगवन् । मेरी भुजाओं में पूर्ण आयुपर्यंत यशदायी बल हो ।

ओ३म् उर्वोर्म ओजोऽस्तु ।।

(इससे दोनों घुटनों का स्पर्श करें ।)

हे परमेश्वर । मेरे पैरों में जीवनपर्यंत शक्ति तथा गति रहें ।

ओ३म् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सहसन्तु ।।

(इससे संपूर्ण शरीर में जल छिड़कें)

हे सर्वरक्षक प्रभो । मेरे शरीर के सब अंग सबल और स्वस्थ हों ।

3. *ईश्वर भक्ति*

पवित्रीकरण के पश्चात् अग्नि जलाने से पहले मंगलाचरण के रूप में ईश वंदना करनी चाहिये । वर्तमान युग में कर्मकाण्ड की जटिलता को खत्म कर देने वाले स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना के चुने हुए वेद मन्त्रों का पाठ किया जाना लिखा है । परमात्मा के गुणों का बखान करना स्तुति है, इससे ईश्वर में प्रीति बढ़ती है । सत्कर्म करते हुए सफलता के लिये सहायता की याचना को प्रार्थना कहते हैं, इससे निरभिमानिता, उत्साह और सहाय की प्राप्ति सम्भव होती है । किसी के समीपस्थ होने को उपासना कहते हैं । उपासना से परब्रह्म से मेल तथा उसका साक्षात्कार होता है । जैसे सर्दी से ठिठुरते व्यक्ति का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है वैसे ही आत्मा व अंतःकरण से परमेश्वर की भक्ति करने से द्वेष दुःख छूटकर

गुण-कर्म-स्वभाव सुधरते हैं । महर्षि ने स्वरचित सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों को सुख देने के लिये दे रखे हैं, उसका गुण भूल जाना ईश्वर को ही न मानना कृतघ्नता और मुर्खता हैं उन्होंने 8 वेदमन्त्रों (यजुर्वेदीय) को **अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्राः** लिखा है । तथापि यह ध्यान रखा जाना चाहिये कि कर्मकाण्ड उबाऊ बोझिल न हो जाये । अति - आवश्यक नहीं है कि सभी देवों का पृथक - पृथक नाम से आह्वान किया जाये । आस्था, समय तथा सुविधानुसार ईश्वर भक्ति करनी चाहिये । चूंकि स्वाहाकार पूर्वक आहुति मन्त्रों से देव शक्तियों का आह्वान एवं नमन भी हो जाता है इसलिये अलग से देव आह्वान आदि किया जाना अनावश्यक है । गुरूवंदना षोडशोपचार, कलश पूजन आदि कर्म देवयज्ञ के भाग नहीं हैं ।

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्राः

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ।।1।।

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर । आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुगुर्ण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिये । जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव एवं पदार्थ है, वह सब हमको प्राप्त कीजिए ।

तू सर्वेश सकल सुखदाता, शुद्ध स्वरुप विधाता है,
उसके कष्ट नष्ट हो जाते, शरण तेरी जो आता है ।
सारे दुगुर्ण दुर्व्यसनों से, हमको नाथ बचा लीजे,
मंगलमय गुण-कर्म-पदारथ, प्रेम सिन्धु हमको दीजे ।।

ओ३म् हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।2।।

जो स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य-चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का प्रसिद्ध स्वामी एक ही चेतनस्वरूप था, जो सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व वर्तमान था, सो इस भूमि और सूर्यादि को धारण कर रहा है । हम लोग उस

सुखस्वरूप शुद्ध परमात्मा के लिए ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से विशेष भक्ति किया करें।

तु ही स्वयं-प्रकाश, सुचेतन, सुखस्वरूप शुभत्राता है ।
सूर्य-चन्द्रलोकादिक को, तू रचता और टिकाता है ।
पहले था अब भी तू ही है, घटघट में व्यापक स्वामी ।
योग, भक्ति, तप द्वारा तुझको, पावें हम अन्तर्यामी ।।

ओ३म् य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्यदेवाः ।।
यस्यछायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।3।।

जो आत्मज्ञान का दाता, शरीर, आत्मा और समाज के बल का देने हारा, जिसकी सब विद्वान् लोग उपासना करते हैं और जिसका प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, जिसका आश्रय ही मोक्ष सुखदायक है, जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही मृत्यु आदि दुःख का हेतु है। हम लोग उस सुखस्वरूप, सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिये आत्मा और अंतःकरण से भक्ति करें अर्थात् उसी की आज्ञा पालन में तत्पर रहें।

तू ही आत्मज्ञान बलदाता, सुयश विज्ञ जन गाते हैं,
तेरी चरण-शरण में आकर, भव सागर तर जाते है। ।
तुझको ही जपना जीवन है, मरण तुझे बिसराने में,
मेरी सारी शक्ति लगे प्रभु तुझसे लगन लगाने में ।

ओ३म् यःप्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतोबभूव ।
य ईशेऽस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।4।।

जो प्राण वाले और अप्राणि रूप जगत् का अपने अनन्त महिमा से एक ही विराजमान राजा है, जो इस मनुष्यादि और गौ आदि प्राणियों के शरीर की रचना करता है, हम लोग उस सुख स्वरूप सकलैश्वर्य के देने हारे परमात्मा की उपासना अर्थात् अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञापालन में समर्पित करके विशेष भक्ति करें।

तूने अपनी अनुपम माया से जगज्योति जगाई है ।
मनुज और पशुओं को रचकर निज महिमा प्रगटाई है ।
अपने हिय सिंहासन पर श्रद्धा से तुझे बिठाते हैं ।
भक्ति भाव की भेंटे लेकर तव चरणों में आते हैं ।।

ओ३म् येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्व स्तभितं येन नाकः ।
योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।5।।

जिस परमात्मा ने तीक्ष्ण स्वभाव वाले सूर्य आदि और भूमि को धारण, जिस जगदीश्वर ने सुख को धारण और जिस ईश्वर ने दुःख रहित मोक्ष को धारण किया है, जो आकाश में सब लोक-लोकान्तरों को विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं वैसे सब लोकों का निर्माण करता है और भ्रमण कराता है, हम लोग उस सुखदायक कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिये सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें।

तारे, रवि चंद्रादिक रचकर, निज प्रकाश चमकाया है,
धरणी को धारण कर तूने, कौशल अलख जगाया है ।
तू ही विश्वविधाता, पोषक तेरा ही हम ध्यान धरें,
शुद्ध भाव से भगवन् तेरे भजनामृत का पान करें ।

ओ३म् प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।।6।।

हे सब प्रजा के स्वामी परमात्मा! आप से भिन्न दूसरा कोई उन इन सब उत्पन्न हुए जड़-चेतनादिकों को नहीं तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि है। जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग, आपका आश्रय लेवें और वांछा करें, उस-उसकी कामना हमारी सिद्ध होवे, जिससे हम लोग धनैश्वर्यों के स्वामी होवें।

तुझसे बड़ा न कोई जग में, सब में तू ही समाया है,
जड़ चेतन सब तेरी रचना तुझमें आश्रय पाया है ।
हे सर्वोपरि विभो । विश्व का तूने साज सजाया है,
धन दौलत भरपूर दीजिये, यही भक्त को भाया है ।

ओ३म् स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ।।7।।

हे मनुष्यों ! वह परमात्मा अपने लोगों का भ्राता के समान सुखदायक, सकल जगत् का उत्पादक, वह सब कामों का पूर्ण करने हारा, संपूर्ण लोकमात्र और नाम, स्थान जन्मों को जानता है और जिस सांसारिक सुखः दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त मोक्षस्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में मोक्ष को प्राप्त होके

विद्वान लोग स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरू, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है, अपने लोग मिलके सदा उसकी भक्ति किया करें।

तू गुरू है, प्रजेश भी तू है, पाप पुण्य फल दाता है ।
तू ही सखा बन्धु मम तू ही, तुझसे ही सब नाता है ।
भक्तों को इस भाव बन्धन से तू ही मुक्त कराता है ।
तू है अज, अद्वैत महाप्रभु । सर्वकाल का ज्ञाता है ।

ओ३म् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ।।8।।

हे स्वप्रकाश, ज्ञानस्वरूप, सब जगत् के प्रकाश करने हारे सकल सुखदाता परमेश्वर। आप जिससे संपूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा करके हम लोगों को विज्ञान वा राज्यादि सम्पूर्ण ऐश्वर्य की प्राप्ति कि लिये अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञान और उत्तम कर्म प्राप्त कराइये और हमसे कुटिलतायुक्त पापरूप कर्म को दूर कीजिये। इस कारण हम लोग आपकी बहुत प्रकार की स्तुतिरूप नम्रतापूर्वक प्रशंसा सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें।

तु ही स्वयं प्रकाश रूप प्रभु सबका सिरजनहार तु ही,
रसना निशिदिन रटे तुम्ही को मन में बसना सदा तु ही ।
कुटिल पाप से बचाते रहना हरदम दया निधान ।
अपने भक्त जनों को भगवन् दीजे यही विशद वरदान ।

टीप : यज्ञ सम्पन्न कराने वाले याजक को ऋत्विज् या पुराहित कहते हैं, जिन पर ही समस्त यज्ञकर्म की प्रतिष्ठा होती है तथापि दैनिक अनुष्ठान वाले नित्यकर्म हवन (अग्निहोत्र) हेतु प्रतिदिन संकल्प करना एवं आचार्य आदि ऋत्विजों का वरण किया जाना अनिवार्य नहीं है। अग्निहोत्र अकेले भी किया जाता है। अन्य वृहद यज्ञों में संकल्प पाठ पुरोहित के द्वारा कराया जाता है।

4. यज्ञोपवीत (जनेऊ)

यज्ञ की व्यवस्था बताने वाले ग्रन्थों में कहा गया है जो यज्ञोपवीत धारण किया है वही वेदाध्यन तथ यज्ञ करने और कराने का अधिकारी है। यज्ञोपवीत के द्वारा ही यजमान को यज्ञ के व्रत से बांधा जाता है। जैसे बिना विवाह संस्कार के व्यक्ति को गृहस्थ का अधिकार नहीं मिलता उसी प्रकार जनेऊ धारण किये

बिना यज्ञादि करने का अधिकार नहीं मिलता। कपास के 96 अंगुल धागे से बने तीन-तीन लपेटे जनेऊ को बांये कन्धे से हृदय से होकर दाहिने हाथ की ओर धारण किया जाता है। मनुष्य जिन परिस्थितियों में जन्म लेता है, पलता और बढ़ता है उसमें स्वाभाविक रूप से तीन ऋणों से ऋणी होता है। उस पर पितृ ऋण, देवऋण, एवं ऋषिऋण होते हैं। उत्तम सन्तान के निर्माण से पितृऋण से, यज्ञ (हवन) से देवऋण तथा स्वाध्याय के द्वारा ऋषिऋण से मुक्त होने की प्रेरणा देता है जनेऊ। माँ के गर्भ में भौतिक व मानसिक शरीर का निर्माण नाभि से लगे उपवीत (तन्तु) के कारण होता है वैसे ही प्रकृति (अदिति) माँ के गर्भ में भावनात्मक शरीर की उत्तम निर्मिति के लिये यज्ञोपवीत आवश्यक है। यज्ञोपवीत धारण करने का मन्त्र (पारस्कर गृह्यसूत्र 2/2/11) :-

ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्चशुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ।।
ओ३म् यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यमि ।

यज्ञोपवीत अत्यन्त पवित्र है, प्रजापति ने स्वाभाविक रूप से पहले (माँ के गर्भ में) दिया था, जो आगे ले चलने वाला, आयु बढ़ाने वाला, उज्जवल भविष्य का प्रदाता एवं शक्ति और तेज वर्द्धक है।

हे ब्रह्मसूत्र! तू यज्ञ में धारण करने योग्य है, तुझे यज्ञानुष्ठान हेतु धारण करता हूँ। मैं यज्ञोपवीत के साथ ही उसके गुणों को धारण करता हूँ।

टीप :- आजकल यज्ञोपवीत के स्थान पर हाथ में रक्षासूत्र (कलावा) बांधने की प्रथा चल पड़ी है, जो यज्ञोपवीत नहीं है। उदर-विकार के निवारण के लिये हाथ में बांधा जा सकता है, पर धार्मिक होने का चिन्ह नहीं है **(न लिंग धर्मकारणम्)** 15—15 दिनों (पाक्षिक) में मौली धागा बदलना चाहिये। पसीने आदि से गंदा धागा हाथ में नहीं दिखना चाहिये।

5. अग्नि प्रणयन

हवन करने के लिये सर्वप्रथम अग्नि की आवश्यकता होती है। अग्नि ही यज्ञ का प्रमुख प्रतिनिधि है। वेद-विज्ञान के ज्ञाता विद्वानों ने अग्नि को आदिमानव का प्रथम आविष्कार कहा है। १०८ नामों, रूपों तथा कार्यों वाली अग्नि के स्थूल रूप से तीन-तीन भेद बताये गये हैं। पृथ्वी में विद्यमान अग्नि को **'पवमान'**, अन्तरिक्ष की अग्नि को **'पावक'** एवं द्यौलोक में विद्यमान अग्नि को

'शुचि' कहते हैं । पृथ्वी पर मनुष्य के द्वारा भोजन बनाने के लिये जब चूल्हे पर अग्नि जलायी जाती है तब वह **'आमादग्नि'** कहलाती है । मांस या मृतदेह को जलाने वाली अग्नि **'क्रव्याद'** कही जाती है और देवताओं की प्रसन्नता के लिये यज्ञ में वेदमन्त्रों से अभिमन्त्रित प्रज्वलित अग्नि को **'देवयाज'** कहते हैं । इसी देवयाज अग्नि को याज्ञिक शब्दावली में जातवेद, द्रविणोदः, इध्म, नराशंस, ईलः, दैव्याहोतारः, स्वाहाकृति, घृतप्रतीक, धूमकेतु, हव्यवाहन, स्वाहापति इत्यादि नामों से पुकारते हैं । यह यज्ञाग्नि वर्षाकारक, शोधक, वायुप्रद, बुद्धि का उत्पादक और मन का प्रेरक है । यह आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक भय से रक्षा करती है । निरूक्त के व्याख्याकार विद्वान् के अनुसार त्रिलोकवर्ती पवमान, पावक व शुचि अग्नियाँ कर्मकाण्ड में प्रयुक्त की जाती हैं । इन्हें गार्हपत्य, दक्षिणा तथा आहवनीय अग्नियाँ भी कहते हैं । अग्निहोत्र (हवन) आवहनीय अग्नि में की जाती है, इसे सौर अग्नि का प्रतीक भी कहते हैं । गोभिलगृह्यसूत्र के "भूर्भुवः स्वरित्यभिमुखं अग्निम् प्रणयन्ति" आदेश द्वारा आहवनीय कुण्ड में अग्नि स्थापित की जाती है जिसमें यज्ञ कार्य सम्पन्न किया जाता है ।

5/1. दीप जलाना

ओ३म् भूर्भुवः स्वः इस महाव्याहृतिमन्त्र को बोलकर घृतदीप जलाना चाहिये । उस दीपक से कपूर जलाकर अगले मन्त्र का पाठ पूर्ण कर हवनकुण्ड के अन्दर रख देवें । हवनकुन्ड तांबे या मिट्टी का पिरामिड आकार का बनाया जाता है जो नीचे संकरा और ऊपर चौड़ा होता है । सोने या चांदी के हवनकुण्ड की कल्पना ही की जा सकती है महंगाई के इस युग में । लोहे के हवनकुण्ड का प्रचलन बन्द कर दिया जाना चाहिए क्योंकि उससे अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता हैं चौकोन यज्ञकुण्ड को सभी प्रकार से उत्तम माना जाता है । यद्यपि कामनाभेद से अर्धचन्द्राकार, गोल, त्रिकोण, पदमाकृति कुण्ड भी बनाये जाने का विधान किया गया है । कुछ विद्वानों के अनुसार कुण्ड के अभाव में स्थण्डिल पर भी नित्य होम कर सकते हैं । भूमि में रखी हुई ईंट या बिछायी गई रेत को स्थण्डिल कहते हैं ।

इस घृतयुक्त दीपक की अग्निशिखा में भूः अर्थात् प्राणों को उत्पन्न करने की शक्ति मूलरूप में विद्यमान है । इसी में भुवः अर्थात् दुःखनाशक शक्ति और स्वः अर्थात् लोक-परलोक का समस्त सुख प्रदान करने की शक्ति मूलरूप से विद्यमान है । अतः इस मूलाधार अग्नि से कुण्ड में यजुर्वेद के तीसरे अध्याय

का चौथा मन्त्र बोलकर अग्नि का आधान (स्थापन) किया जाता है । वस्तुतः यहां मन्त्र का विनियोग यथार्थरूप में किया जाता है । जो कुछ मन्त्र में कहा गया है वैसा ही कृत्य करना यथार्थ विनियोग कहा जाता है । कर्मकाण्डीय दृष्टि से कभी-कभी सद्भावना विनियोग भी कर लिया जाता है अर्थात् मंत्रार्थ से मिलते जुलते तत्सम कार्य किया जाता है । तीसरे धूर्त्त विनियोग का आश्रय वे लोग लेते हैं जो छद्म होते हैं । जैसे मध्यकाल में शराबियों-कबाबियों ने अजा, अवि तथा अश्वमेध यज्ञों में मन्त्रार्थ के विपरीत विनियोग चालाकी से किया । गणाधिपति देव की स्तुति का प्रसिद्ध यजुर्वेदीय मन्त्र "गणानां त्वा गणपतिं हवामहे..." का धूर्तविनियोग अश्वमेध यज्ञ के नाम पर किया गया है ।

अग्न्याधान मन्त्र का अभिप्राय हैं :- हे सच्चिदानन्द परमात्मा, सूर्य के समान गुणवान् और पृथ्वी की तरह धीर-गंभीर सहनशील होने के लिये देवों की यज्ञस्थली पृथ्वी के ऊपर स्थापित कुण्ड में अन्नों को भोज्य रूप में स्वीकार करने वाली अग्नि को खाद्य पदार्थों की बढ़ोतरी एवं पवित्रता के लिये स्थापित करता हूँ :-

5/2. अग्न्याधान मंत्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वद्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ।
तस्यास्ते पृथिवी देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ।।

यहां भूर्भुवः स्वः इस महाव्याहृति मन्त्र का दो बार प्रयोग किया जाने का अभिप्राय यह है कि भौतिक ज्ञान द्वारा उपार्जित ऐश्वर्य मनुष्य को स्वार्थ की ओर आकृष्ट किया जाता है, इसलिये यदि व्यक्ति उसे आध्यात्मिक भाव से उपार्जित किया करे फिर उसे परमार्थ में लगा दिया करे अर्थात् भौतिकता के साथ-साथ आध्यात्मिकता होने पर ही मानव का कल्याण है ।

हवनकुण्ड में स्थापित अग्नि बुझने न पाये इसके लिये छोटी-छोटी लकड़ियां (समिधायें) सावधानी से रखनी चाहिए और पंखे से धीरे-धीरे हवा देनी चाहिये । ऐसा करते हुए मन्त्रपाठ किया जाय :-

6. अग्नि-प्रदीपन

ओ३म् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते संसृजेथामयं च ।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ।।

यजुर्वेद के अठारहवें अध्याय के चौवनवे मन्त्र द्वारा कामना करनी चाहिये कि हे यज्ञ अग्नि, तू ऊपर की ओर बढ़, अत्यन्त प्रदीप्त हो, इच्छित कामनाओं तथा लोकोपकारी कार्यों को अच्छी तरह सम्पन्न करें । इस अतिसुन्दर यज्ञस्थल में सम्पूर्ण देवगण और यजमान विराजमान रहें ।

7. समिदाधान

यज्ञाग्नि प्रज्वलित रखने के लिये प्रयोग किये जाने वाले काष्ठ को समिधा या इध्म कहते हैं, जो यज्ञीय द्रव्यों का 75 प्रतिशत भाग होता है । यज्ञ में कुछ विशेष लकड़ियां प्रयुक्त की जाती है, जिनमें दुग्ध की मात्रा हो, सेलुलोस तथा लिग्नो सेलुलोस की पर्याप्त उपलब्धता हो । यज्ञोपयोगी वृक्षों में पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम, बेल, चंदन, देवदारू, खैर, बादाम आदि प्रमुख है । कुछ विद्वान् युकेलिप्टस को भी यज्ञीय मानते हैं । समिधादान की तीन समिधायें आठ-आठ अंगुल लंबी अंगूठे जैसी मोटी बीच से न फाड़ी गई, छिलका चढ़ी हुई एवं घृत में पूरी भीगी हुई होनी चाहिये । आन्हिक सूत्रावली ग्रन्थ में त्वचारहित समिधा का निषेध किया गया है । **(न विनिर्मुक्तत्वचाचैव)** यज्ञविज्ञान के ज्ञाता ऋषियों ने यहां तक सूक्ष्म संकेत किया है कि जो समिधा वृक्ष में स्वयं सूखकर गिर जाय या तोड़ लिया जाय वह मित्र देवतात्मक और जो हरे-भरे वृक्ष से शस्त्र द्वारा काट लिया जाय वह वरूण देवतात्मक होती है । मित्र और वरूण देवता की आवधारणा प्राण एवं उदान या अपान की है । यथाः **प्राणोदानौ वै मित्रावरूणौ** । यहां यह सूक्ष्म विज्ञान प्रदर्शित है कि लोहा धातु के स्पर्श से ही प्राणपद यज्ञीय काष्ठ बन्धनकारी वरूण गुणवाली हो जाती है । दूध वाली लकड़ियां जलते हुए प्राणप्रद अर्थात् प्राणीमित्र होती है । यह सहज ही देखा जा सकता है कि यज्ञीय वृक्ष प्रतिदिन सूखी समिधाएं गिराते हैं ।

समिधादान की क्रिया में 4 मन्त्रों से 3 समिधादान का विधान किया गया है । प्रथम मन्त्र से पहली समिधा उसके बाद दो मन्त्रों से दूसरी और चौथे मन्त्र से तीसरी समिधा कि आहुति दी जाती है । इसका रहस्य यह प्रतीत होता है कि ब्रह्माण्ड में तीन गुण सत्व, रज और तम क्रियाशील हैं । मध्य का रजस्तत्व सत्वगुण से मिलकर सात्विक रजस तथा तमोगुण से मिलकर तामसिक रजस् इन दो रूपों में रूपान्तरित हो जाता है । इसी भाव का द्योतक है दूसरी समिधा का दान करते समय दो मन्त्रों को पढ़ा जाना । यजुर्वेद के तीन मन्त्रों से पूर्व

आश्वलायन गृह्यसूत्र का मन्त्र पढ़कर पहली समिधा की आहूति का विनियोग गृह्य सद्भावना दृष्टि से किया गया जान पड़ता है क्योंकि इसी मन्त्र से आगे पांच आहुतियां घी की दी जायेंगी । इन तीनों समिधाओं द्वारा स्थापित यज्ञाग्नि को तीनों लोकों में क्रियाशील करके यज्ञ को ब्रह्माण्ड में व्याप्त किया जाता है । तीन समिधाएं ही लेने का मतलब है तीन प्रकार से ज्ञान की प्राप्ति के उपाय करना । लौकिक दृष्टि से सत्संग, स्वाध्याय और देशाटन तथा परालौकिक दृष्टि से आत्मचिंतन, सत्कर्म सम्पादन एवं उपासना । उक्त तीनों मन्त्र गायत्री छन्द में है । गायत्री छन्द त्रिपदा होता है । अतः तीन ही समिधाएं होती हैं । त्रिपदा में एक-एक पाद 8–8 अक्षर के होने से गायत्री 24 अक्षरों की होती है इसलिये भी 8–8 अंगुल की तीन समिधाएं मिलकर 24 अंगुल की ली जाती है । यहां मन्त्र तथा समिधा का साम्य है । समिधादान के यजुर्वेदीय मन्त्रों का भाव है :- समिधा के द्वारा अग्नि को जलाओ अत्यधिक तपे हुए (कड़कते हुए) गौघृत से अतिथि अग्नि में आहुति दो और उससे लपटों वाली जातवेद एवं अंगिरस अग्नि में हव्य पदार्थों की आहुति देवें :-

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्ते नेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नोद्येन समेधय स्वाहा ।
इदमग्नये जातवेदसे इदं न मम ।।1।। (इस मन्त्र से पहली समिधा)

संसार के समस्त पदार्थों में वर्तमान अग्ने । यह समिधा तुम्हारी है । इससे तुम सुदीप्त और तीव्र हो । स्वयं समृद्ध होकर हमें प्रजा, पशु, तेज तथा अन्न आदि सांसारिक वैभव से समृद्ध करो तथा हमें भी अपनी भांति सुदीप्त और आत्म शक्ति युक्त बनाओ । यह सब जातवेद अग्नि को समर्पित है । इसमें मेरा कुछ स्वार्थ नहीं ।

ओ३म् समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बो धयतातिथिम् ।
आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा । इदमग्नये, इदं न मम ।।2।।
ओ३म् सुसमिद्धाय शोचिषं घृतं तीव्रं जुहोतन ।
अग्नये जातवेदसे स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे, इदं न मम ।।3।।
(इन दो मन्त्रों से दूसरी समिधा की आहुति दें ।)

समिधाओं से अग्नि को प्रदीप्त करो और घृत की आहुतियों से इस प्रसरणशील अग्नि को तीव्र करो । पुनः तीव्र अग्नि में यथाविधि हवि की आहुति दो । यही विधान है । यह सब उस अग्नि को समर्पित है । इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं ।।2।।

इन दो मन्त्रों से दूसरी समिधा भली भांति तीव्र रूप से प्रदीप्त, सब ओर विद्यमान अग्नि की ज्वालाओं में तपाये हुए घृत की आहुतियां दो। यह जातवेद रूप अग्नि के लिये समर्पित है। इसमें मेरा कुछ नहीं।।3।।

ओ३म् तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरोघृतेनवर्धयामसि बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा। इदमग्नयेऽङ्गिरसे, इदं न मम।।4।।

(इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति दें।)

सर्वत्र प्राप्त होने वाले पदार्थों में भेद करने में सक्षम, तेज युक्त अग्नि। हम तेरे यज्ञ को समिधा, सामग्री और घृत आदि से प्रदीप्त करते हैं। मेरा यह कथन सत्य हो। यह सुखदायक अग्नि के लिए है मेरे लिए नहीं।

8. घृताहुति

यज्ञ का दूसरा आधारभूत पदार्थ है - घृत। केवल समिधाओं से यज्ञ सफल नहीं हो सकता। समिधाओं से प्रदीप्त ज्योतिर्मय अग्नि में घी की आहुतियाँ देने से वह इच्छित समय तक प्रदीप्त रह सकती है। घृताहुतियों से समृद्ध ज्वालाओं से वर्च, ऊर्जा दसों दिशाओं में व्याप्त होकर अणु-परमाणु में वैद्युती शक्ति संचारित होकर नई ऊर्जा स्फूर्ति तथा जीवनीय शक्ति प्राप्त होती है। इससे अपवित्रता भी दूर होती है। घृत में परम शोधक गुण है। याज्ञिक प्रभाव की दृष्टि से घी के आज्य और सर्पि नाम रखकर ऋषियों ने अद्‌भुत् विज्ञान को दर्शाया है।

घी के द्वारा अग्नि की ऊर्जा को बढ़ाते हैं कहकर **घनीभूतं घृतं विदुः** अर्थात् जमे हुए को घी और पिघले हुए भाग को आज्य कहा गया है। **एषा हि देवानां तनुः यदाज्यम्।।** आज्य ही सभी देवों (प्राकृतिक शक्तियों) का विस्तारक है। **यदसर्पत्तत्सर्पिः** जो सर्प की तरह गतिशील है वह आज्य सर्पि है अर्थात् जिस तरह सर्प हवा का जहर पीकर वायु को विषमुक्त करता है वैसे ही सर्पि भी यज्ञ के द्वारा पर्यावरण को प्रदूषण मुक्त करने में समर्थ है। प्राचीन यज्ञाचार्यों के अनुसार घृत से गोघृत ही ग्राह्य है। अन्य घी लाभकारी नहीं पाये गये हैं।

गौघृत जलने पर कोई हानिकारक पदार्थ उत्पन्न नहीं करता। उसमें पाये जाने वाले तत्वों में 12 प्रकार के धातु, कुछ लैक्टोज एवं कार्बोक्सिलिक अम्लों में प्रमुखतः पामिटिक, औलिक, मिरिस्टिक, स्टिएरिक और लिनोलीइक हैं।

वैसे इसमें थोड़ी मात्रा में व्यूटिरिक, लौरिक, कौरिक, कैप्रिलिक व कैप्रोईक अम्ल भी होते हैं। घी के जलने से प्रखर उष्णता की ऊर्जा तैयार होती है जिसमें अशुद्ध वायु को शुद्ध करने तथा शरीर और मन के तनावों को भी दूर करने का अद्‌भुत सामर्थ्य है। हव्य सामग्री से नित्यकर्म की दैनिक आहुतियाँ देने के लिए अग्नि का प्रदीप्त होना आवश्यक है, जिससे आक्सीकरण के लिये ज्वालाओं में पर्याप्त ताप रहे। अतः पिघले घी से पांच आहुतियां लगातार एक ही मन्त्र को पांच बार पढ़कर दी जाती है। मुण्डक उपनिषत्कार ऋषि का कथन है :- **'यदालेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने। तदाज्यभागावंतरेण आहुतिं प्रतिपादयेत्।।**

जब ज्वालाएं जिव्हा की तरह खूब लपलपाने लगे तब आज्याहुति के बाद साकल्य डालना चाहिये।

पांच ही घृताहुतियाँ क्यों ? इस पर विद्वानों ने अनेक पहलुओं से विचार प्रस्तुत किया है। जगत् में पांच महाभूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) की क्रियाशीलता को दर्शाने अथवा प्राणी जीवन के पांच आधार पंच प्राणों के द्योतक है अथवा गार्हपत्य, आवहनीय, दक्षिणा, सभ्य और आवसथ्य संज्ञक पांच श्रौत अग्नि कुण्डों के परिचायक हैं। **पंचजना मम होत्रं जुषध्वम्** अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज आदि पांचों वर्ग के मनुष्य यज्ञ का सेवन करें, इस भावना से पांच आहुतियां दी जाती है अथवा मनुष्य की प्रधान रूप से पांच कामनाओं का उल्लेख घृताहुति मंत्र में है - वे हैं प्रजा (दीर्घजीवी, सुयोग्य संतान), पशुधन, तेज, अन्नादि खाद्यपदार्थ एवं उपभोग सामर्थ्य। **बाहुमात्र्यसुचः** प्रमाण के अनुसार मुट्ठी बंधे हाथों अर्थात् 16 अंगुल लंबी स्त्रुवा (चम्मच) में कम से कम 5 ग्राम घी भरकर यजमान मृगीमुद्रा (अंगुठा, अनामिका) से पकड़ कर आहुति देवें।

घृताहुति मन्त्र

ओ३म् अयंत इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्धवर्द्धय चास्मा्न प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम।।

नोट :- इस मन्त्र में महर्षि आश्वलायन ने कहीं अर्धविराम आदि नही रखा है इसलिये प्रयास किया जाना चाहिये कि एक ही स्वर में मंत्रपाठ हो, जिससे पांच प्राणायाम हो जाये।

9. जलसिंचन

(हवन कुण्ड के चारों ओर जल छिड़कना)

घृताहुतियों से यज्ञाग्नि को खूब प्रदीप्त करने से उस स्थान विशेष में ताप की अधिकता हो जाती है । अतः अग्नि के चारों ओर जलसिंचन करके जल की परिधि द्वारा वायुमंडल में आर्द्रता स्थापित की जाती है, जो सृष्टि विज्ञान के स्वरूप का प्रदर्शन ही है । सृष्टि की कार्यप्रणाली में अग्नि द्वारा ताप बढ़ने पर जल अवश्य प्रगट होता है इसलिए उपनिषद्कारों ने **अग्नेरापः** अग्नि के द्वारा जल की उत्पत्ति बताया है । यज्ञाग्नि के ताप के प्रभाव से जल में वाष्णीकरण क्रिया होने लगती है । उस वाष्प के साथ आहुति के धूम का भी मिश्रण होने लगता है । इस प्रकार यज्ञस्थल पर अग्निषोमात्मक मंडल बनना प्रारम्भ हो जाता है ।

अग्नि जलने के कुछ देर बाद जल छिड़कने का मतलब है आंच (ताप) पाकर कीटाणु हवनकुण्ड से निकल जायें फिर चारों ओर जल भर जाने से वे पुनः प्रवेश न कर सकें ।

गृह्यसूत्रों में महर्षि गोभिल और आपस्तम्ब ने जल प्रसेचन की विधि तथा मन्त्र का निर्देश किया है । उनके अनुसार जलपात्र से अपने दाहिने हाथ की अंजली में भरकर सबसे पहले हवनकुण्ड के पूर्व भाग में ईशान से आग्नेय कोण तक पानी से छिड़काव करें क्योंकि पूर्व में सूर्य है और उसकी उष्णता से पूर्वी हवा बादल और वर्षा लाती है । जल सिंचन वृष्टि का प्रतीक है । उसके बाद यजमान पुनः अपने आसन पश्चिम दिशा में आकर दूसरे मन्त्र से नैऋत्य से वायव्य कोण तक जल सींचे । तीसरे मन्त्र को बोलकर उत्तर दिशा में वायव्य कोण से ईशान कोण तक जल सींचे । अब यजुर्वेदीय मन्त्र का पाठ करने के पश्चात् आग्नेय कोण से जल छिड़कना आरम्भ कर नैऋत्य कोण से सींचते हुए चारों दिशाओं में जल डाले । इस प्रक्रिया से यज्ञमान द्वारा यज्ञकुण्ड की तीन परिक्रमा हो जाती है ।

जल प्रसेचन मन्त्र

ओ३म् अदितेऽनुमन्यस्व ।।

हे परमेश्वर हमारा यह यज्ञरूपी सत्कर्म अखंडित पूर्ण हो ।

ओ३म् अनुमतेऽनुमन्यस्व ।।

हे देव हमारा यह सत्कर्म वेदानुकूल हो ।

ओ३म् सरस्वत्यनुमन्यस्व ।।

हे प्रभु, हमारा यह सत्कर्म ज्ञानपूर्वक सम्पन्न हो ।

ओ३म् देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गंधर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ।।

हे सर्व रक्षक, त्रुटियों को दूर करने वाले दिव्यगुणयुक्त परमेश्वर यज्ञ को सफल कीजिये, ऐश्वर्य के लिये यज्ञपति को बढ़ाइये अत्युत्तम वेदवाणी अथवा पृथ्वी के धारक मन और बुद्धि को पवित्र करें तथा वाणी के अधिपति स्वामी, हमारी वाणी मधुर बनाइये ।

10. आघारावाज्य भागाहुति

आघारौ = धाराप्रवाह रूप में आज्यभाग (पिघले घी) की आहुति यजमान मृगीमुद्रा में स्रुवा पकड़ व घी भरकर यज्ञाग्नि में दें । पूर्वोक्त पांच घृताहुतियों और जलसिंचन क्रिया से निर्मित विराट अग्निषोमात्मकमण्डल में आहुति का प्रभाव पहुंचाने सर्वप्रथम अग्नि के लिये तत्पश्चात् सोम के लिये आहुति दी जाती है । अन्न-अन्नाद अर्थात् सेलफिशन-सेलडिवीजन एवं अग्निषोमात्मक एसीमिलेशिन या एलिमिलेशन प्रक्रिया से प्रजनन या ग्रोथ प्रारंभ होता है इसलिये तीसरी आहुति प्रजापति के लिये दी जाती है क्योंकि प्रजा का आधार प्रजापति ही है । प्रजा शक्ति से सम्पन्न होवे इसलिये ऐश्वर्यप्रदाता इन्द्र के लिये चौथी आहुति दी जाती है ।

आघारावाज्यभाग की पहली आहुति यज्ञाग्नि के उत्तर दिशा में दी जाती है क्योंकि उत्तर दिशा अग्निप्रधान दिशा मानी गई है, जिससे मेग्नेटिक फिल्ड क्रियाशील है । अग्नि और ज्ञान एक दूसरे के प्रेरक हैं । उत्तरीय चुम्बक पुरूष रूप है । दूसरी आहुति दक्षिण दिशा में दी जाती है । दक्षिण सोमस्वरूप है । सोम और शान्ति एक दूसरे के पूरक हैं, जो स्त्रीरूप है । प्रजासंधि एवं प्रजनन संधान है, अतएव तीसरी आहुति यज्ञाग्नि के बीच में दी जाती है । मानवोद्देश्य है ऐश्वर्य की प्राप्ति इसलिये चौथी आहुति इन्द्र के लिये है ।

1. ओ३म् अग्नये स्वाहा ।। इदमग्नये - इदन्न मम ।।
प्रकाशरूप परमेश्वर अथवा यज्ञाग्नि के लिये यह आहुति है, मेरे लिये नहीं।

2. ओ३म् सोमाय स्वाहा ।। इदं सोमाय - इदन्न मम ।।
शान्तिरूप सर्वेश्वर अथवा सोमलता आदि के लिये यह आहुति है, मेरे लिये नहीं।

3. ओ३म् प्रजापतये स्वाहा ।। इदं प्रजापतये - इदन्न मम ।।
प्रजापति परमात्मा या प्रजापालक प्रजातन्त्र के लिये यह आहुति है, मेरे लिये नहीं।

4. ओ३म् इन्द्राय स्वाहा ।। इदमिन्द्राय - इदन्न मम ।।
इन्द्ररूपी ईश्वर अथवा जनता के ऐश्वर्य के लिए यह आहुति है, मेरे लिये नहीं।

11. दैनिक आहुति

हवनकुण्ड में जब अग्नि की लपटें उठने लगती हैं तब उसमें हव्य सामग्री की आहुतियाँ दी जाती है। सामग्री के जलने पर बनने वाले पदार्थों के विषय में अभी अधिक अनुसन्धान की आवश्यकता है फिर भी कुछ हव्य पदार्थों के जलने का प्रभाव जाना जा सका है। यज्ञ सामग्री के सुगन्धित, मिष्टयुक्त, पुष्टिकारक और रोगनाशक द्रव्यों में अधिकांशतः कार्बोहाइड्रेट विद्यमान होता है। शर्करा तथा स्टार्च इसी कार्बोहाइड्रेट के दो प्रकार माने जाते है। चावल, गेंहू, जौ, उड़द, कपूरकचरी, तगर आदि में स्टार्च होते हैं। खांड, शहद, दुग्ध, दाख, छुहारे, नरकचूर आदि में पर्याप्त शर्करा होती है। तिल, ग्लिसराल एवं इलेइडिक व स्टिएरिक अम्ल के मेल से बना है। चिरौंजी, नारियल, लौंग आदि में वसीय अम्ल होता है। कस्तुरी, केसर, देवदार, अगर, श्वेतचंदन, जायफल, जावित्री, कुलंजन, तेजपत्र, बालछड़ (जटामांसी), इलायची, दालचीनी, कपूर आदि में कुछ वाष्पशील सौरभिक तत्व उत्पन्न करने की शक्ति है। वस्तुतः उक्त द्रव्यों में पाइनीन, हाईड्रोकार्बन, बोर्निओल, सिट्रल, सिनिआल टर्पिनिआल, सैफ्रोल, थाइमोल, कार्वाक्राल, सिनेमिक, सैलेसिलिक अम्ल आदि की उत्पत्ति सम्भव दीख पड़ती है। इनके द्वारा वायुमण्डल न केवल सुगन्धिमय हो जाता है

वरन् विष आदि का भी शमन हो जाता है। इनसे पृथ्वी जल व अन्न आदि औषधियों के भी विकार दूर होते हैं।

पूर्वकथित इन औषध-द्रव्यों को मूल्य एवं प्रभाव की दृष्टि से असमान मात्रा में लेकर साफ कर लें और कूट पीसकर आहुति योग्य मिश्रण बना लें। 16 आहुतियों वाले दैनिक अग्निहोत्र के एक समय प्रति व्यक्ति के लिये 100 ग्राम हवन सामग्री में 50 ग्राम घी मिलाकर 6 ग्राम की एक आहुति दी जाय।

उन्नीसवीं शताब्दी में वेदों के वैज्ञानिक व्याख्याकार एवं आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यजुर्वेद अध्याय 3 मन्त्र संख्या 9,10 तथा तैत्तिरीय आरण्यक 10/2 के आधार पर लिखा है कि 16–16 आहुतियों वाला दैनिक यज्ञ प्रातः एवं सन्ध्या की सन्धि बेला में प्रत्येक मनुष्य को अनिवार्य रूप से करना चाहिए। महर्षि का आशय प्रतीत होता है कि प्रति मिनट औसतन सोलह श्वासों को नासिका से प्राणरूप में लेकर अपान या उदान रूप में छोड़ने वाले व्यक्ति को हर श्वास का मोल चुकाना चाहिए अथवा दिनरात में लगभग 16 किलो प्राणवायु से अपना जीवन चलाने और उसे बिगाड़ कर वायुमण्डल में छोड़ देने वालों को 16 आहुतियों वाला यज्ञ सन्धि बेला में कर बिगड़ी वायु को शुद्ध करना ही चाहिए। ऐसा कर हम अपने द्वारा किये गये प्रदूषण रूपी पाप का प्रायश्चित कर सकते हैं। इससे अधिक जितनी भी आहुतियाँ यज्ञाग्नि में दे सकें वे सब पुण्य प्रदायक ही होंगी। 'अधिकस्याधिक फलं' के अनुसार अधिक से अधिक हवियों वाला विशाल यज्ञ मूसलाधार की तरह दोषों तथा बाधाओं को दूर कर पर्यावरण में सोम और भैषज्य तत्वों को प्रचुर मात्रा में भर देगा। इससे दूसरों द्वारा किये गये प्राकृत पापों का भी निवारण हो सकेगा।

12. नित्य आहुति मन्त्र

ओ३म् सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ।।1।।
सूर्य के प्रकाश के प्रकाशक परमात्मा की प्रसन्नता के लिये हम स्तुति करते हैं।

ओ३म् सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।।2।।
सर्वविद्या और ज्ञान के दाता सर्वेश्वर के अनुग्रह के लिये हम स्तुति करते हैं।

ओ३म् ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ।।3।।
जिसकी ज्योति से सारा जगत् जगमगा रहा है उसी
जगदीश्वर की प्रसन्नता के लिये हम स्तुति करते हैं ।

ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरूषसेन्द्रवत्या जुषाणः
सूर्यो वेतु स्वाहा ।।4।।
सर्वलोक में व्यापक सर्वशक्तिमान् सर्वनियन्ता
सर्वेश्वर की प्रीति प्राप्त करने के लिये हम स्तुति करते हैं ।

ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ।।5।।
अग्नि की ज्योति की भी उस जगदीश्वर के अनुग्रह के
लिए हम प्रार्थना करते हैं ।

ओ३म् अग्निर्वर्चो ज्योतिवर्चः स्वाहा ।।6।।
अग्नि में ज्योतिस्वरूप परमेश्वर की दीप्ति है, इसी की हम
प्रार्थना करते हैं ।

नोट : (अगले मन्त्र को मन में पढ़कर आहुति देवें)

ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योग्निः स्वाहा ।।7।।
अग्नि की ज्योति में परमात्मा की ज्योति है, उसी की हम
स्तुति करते हैं ।

ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या
जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ।।8।।
प्रकाशमान सर्वप्रेरक महाप्रभु की रात्रि भी एक विभूति है । वह
हमारे लिए प्रीतयुक्त, सुखप्रद हो । यह यज्ञ सफल हो, यह
परमात्मा से हमारी प्रार्थना है ।

ओ३म् भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ।
इदमग्नये प्राणाय इदन्न मम ।।9।।

परमेश्वर प्राणाधार है । वही प्राणवायु का पोषक है । उसी के
लिये यह आहुति है, मेरे लिये नहीं ।

ओ३म् भूवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ।
इदं वायवेऽपानाय — इदन्न मम ।।10।।
परमेश्वर प्राणपति है । वही अपान-वायु का रक्षक है । उसी के
लिये यह आहुति है, मेरे लिये नहीं ।

ओ३म् स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ।
इदमादित्याय व्यानाय-इदन्न मम ।।11।।
परमेश्वर मंगल स्वरूप है । उसी के प्रताप से व्यान-वायु
मनुष्य के लिये स्वास्थ्यदायक होता है । यह आहुति उसी के
लिये है मेरे लिए नहीं ।

ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ।
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः — इदन्न मम ।।12।।
परमात्मा सबका स्वामी है । अग्नि, वायु और सूर्य उसी के
नियंत्रण के अधीन है । वही प्राण, अपान और व्यान से जीवन
का पोषण और रक्षण करता है । यह आहुति उसी के लिए है,
मेरे लिए नहीं ।

ओ३म् आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् स्वाहा ।।13।।
परमात्मा-सर्वरक्षक, सर्वव्यापक, ज्योतिर्मय, जगत् की बीज
अविनाशी सृष्टिकर्त्ता, सर्वाधार, अन्तर्यामी और सुखस्वरूप है ।

ओ३म् यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरू स्वाहा ।।14।।
हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! जिस मेधा बुद्धि का आश्रय लेकर
मनुष्य उच्चपद प्राप्त कर लेता है, उसी मेधा से हमें अलंकृत करो ।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद् भंद्र तन्न आयुव ।।15।।

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर ।आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिये। जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव एवं पदार्थ है वह सब हमको प्राप्त कीजिए ।

ओ३म् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ।।16।।

हे स्वप्रकाश, ज्ञानस्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने हारे सकल सुखदाता परमेश्वर ।आप जिससे सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा करके हम लोगों को विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञान और उत्तम कर्म प्राप्त कराइये और हमसे कुटिलतायुक्त पापरूप कर्म को दूर कीजिये ।इस कारण हम लोग आपकी बहुत प्रकार की स्तुतिरूप नम्रतापूर्वक प्रशंसा सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें।

स्वयं वाजिं स्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व ।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ।।

(यजुर्वेद 23/15)

हे मनुष्य ! तू अपने शरीर को समर्थ कर, स्वयं यज्ञ कर और उसके फल को पा क्योंकि यज्ञ का महत्व स्वयं यज्ञ करने में हैं ।

देवयज्ञ (अग्निहोत्र) मन्त्र भाग

1. *आचमन*

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा।।1।।
ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा।।2।।
ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा।।3।।

2. *अंङ्ग स्पर्श*

ओ३म् वाङ्गमआस्येऽस्तु।।
ओ३म् नसोर्मे प्राणोऽस्तु।।
ओ३म् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु।।
ओ३म् कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु।।
ओ३म् बाह्वोर्मे बलमस्तु।।
ओ३म् उर्वोर्मे ओजोऽस्तु।।
ओ३म् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सहसन्तु।।

3. *अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्राः*

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भदं तन्न आसुव।।1।।
ओ३म् हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।2।।
ओ३म् य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।3।।
ओ३म् यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
यईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।4।।
ओ३म् येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्व स्तभितं येन नाकः।
योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।5।।
ओ३म् प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।।6।।
ओ३म् स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ।।7।।
ओ३म् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ।।8।।

4. यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण मन्त्र

ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्रयं प्रतिमुञ्चशुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ।।
ओ३म् यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोप नह्यमि ।

5. दीप जलाना/अग्न्याधान मन्त्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः ।
ओ३म् भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा।
तस्यास्ते पृथिवी देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे।।

6. अग्नि – प्रदीपन

ओ३म् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते संसृजेथामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत।।

7. समिदाधान

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्ते नेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय
चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा।
इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम।।1।।
ओ३म् समिधाग्निं दुवस्यत धृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा। इदमग्नये, इदन्न मम।।2।।
ओ३म् सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन
अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे, इदन्न मम।।3।।
ओ३म् तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरोघृतेनवर्धयामसि बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा।
इदमग्नयेऽङ्गिरसे, इदन्न मम ।।4।।

8. घृताहुति मन्त्र

ओ३म! अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्धवर्धय
चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा।
इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम।।

9. जलसिंचन

ओ३म् अदितेऽनुमन्यस्व।।
ओ३म् अनुमतेऽनुमन्यस्व।।
ओ३म् सरस्वत्यनुमन्यस्व।।
ओ३म् देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु।।

10. आघारावाज्य भागाहुतिः

ओ३म् अग्नये स्वाहा। इदमग्नये - इदन्न मम।
ओ३म् सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय - इदन्न मम।।
ओ३म् प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये - इदन्न मम।।
ओ३म् इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय - इदन्न मम।।

12. नित्य आहुति मन्त्र

ओ३म् सूर्यो ज्योर्तिज्योतिः सूर्यः स्वाहा।।1।।
ओ३म् सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।।2।।
ओ३म् ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा।।3।।
ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजुरूषसेन्द्रवत्या
जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा।।4।।
ओ३म् अग्निर्ज्योति ज्योतिरग्निः स्वाहा।।5।।
ओ३म् अग्निर्वर्चो ज्योतिवर्चः स्वाहा।।6।।
ओ३म् अग्नि ज्योतिर्ज्योरग्निः स्वाहा।।7।।
ओ३म् सजुर्देवेन सवित्र सजूरात्र्येन्द्रवत्या
जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा।।8।।
ओ३म् भूरग्नये प्राणाय स्वाहा।।
इदमग्नये प्राणाय इदन्न मम।।9।।
ओ३म् भूवर्वायवेऽपानाय स्वाहा।
इदं वायवेऽपानाय - इदन्न मम।।10।।

ओ३म् स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा।
इदमादित्याय व्यानाय - इदन्न मम।।11।।
ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादियेभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा।
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्न मम।।12।।
ओ३म् आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् स्वाहा।।13।।
ओ३म् यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरू स्वाहा।।14।।
ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न आसुव।।15।।
ओ३म् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम।।16।।

विविध चिकित्सा सूची

यज्ञोपैथी

(हवन से रोग निवारण)

सुख, शान्ति और आनन्द का आधार है समन्वय । समन्वय के सिद्धान्त पर ही आयुर्वेद आधारित है । सामन्जस्य प्रकृति का अटल नियम है । आकाश, पृथ्वी तथा शरीर-इन तीनों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है । जब तक इन तीनों में एक जैसी स्थिति न हो तब तक मनुष्य सुखी नहीं रह सकता । शरीर को ठीक रखने के लिए धरती का ठीक होना आवश्यक है एवं भूमि को सही रखने के लिए आकाश का सुधार जरूरी है । पृथ्वी और मनुष्यदेह स्थूल हैं, पर आकाश सूक्ष्म है । दिव्य शक्तियाँ, जिन्हें देवता कहते हैं वे भी सूक्ष्म हैं । स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म तत्व अधिक शक्तिशाली तथा प्रभावी होता है । जिस तरह परमाणु अणु से सूक्ष्म है अतः अणु से शक्तिवान होते हैं उसी तरह सूक्ष्म महान् शक्ति है जिससे आकाशीय एवं पार्थिव संसार सुधरते हैं । यज्ञ सूक्ष्मीकरण के सिद्धान्त पर आधारित अद्‌भुत प्रयोग है । सूक्ष्मीकरण से शक्ति का विकास होता है । यज्ञ स्थूल वस्तुओं को सूक्ष्म बना देता है । आकाश, धरा, और शरीर में समन्वय स्थापित करने का वैज्ञानिक साधन है यज्ञ ।

अशुद्ध वायु को शुद्ध बनाने, रोगों के विषों को नष्ट करने तथा शुद्ध वायु को और अधिक पुष्ट-उपयोगी-हल्की तथा सगुण बनाने के लिये अग्नि में विशेष औषधियाँ डालकर वायु में फैलाया जाना अग्नि (होम) चिकित्सा है, जिसका विधान अथर्ववेद में है -

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कम्...... ।।

अथर्ववेद 3/11/1

यहां कुशल चिकित्सक की घोषणा है कि हे रोगी ! तुम्हें सुखपूर्वक जीने के लिये होम द्वारा रोगबन्धनों से मुक्त करता हूँ ।

हवन में अग्नि तो काम करती ही है साथ में विद्युत-शक्ति अन्तरिक्ष में उत्तमता के साथ समाविष्ट हो जाती है, जो रोग दूर करने में साधन बनती है । होम से वायु शुद्ध होकर रोगी को लाभ पहुँचाती है । यज्ञ के द्वारा औषधियों का प्रभाव सीधा फेफड़ों में होकर रक्त में चला जाता है और हृदय में भी पहुँचकर उसे बल देता है । यज्ञ प्रक्रिया में प्रायः पदार्थ की कारणशक्ति को उभारा जाता है ।

यज्ञ का प्रमुख तत्व है मन्त्र । वैदिक ऋषियों ने हवन की सफलता अथवा पूर्ण प्रभाव के लिये मन्त्र को भी उसका अंग स्वीकार किया है । विज्ञान

में ताप, ध्वनि और प्रकाश को शक्ति की मूलभूत ईकाई माना गया है। मन्त्र को व्यापक बनाने के लिये उसके साथ ताप एवं प्रकाश को यज्ञ के रूप में जोड़ना पड़ता है तभी वह अधिक शक्तिशाली तथा विश्वव्यापी बनता है। मन्त्रशक्ति से जो ध्वनितरंगे उत्पन्न होती हैं वे तीव्र गति से ऊपर उठती हैं। ईथर तत्व के माध्यम से अपने देवता सविता तक पहुँचती है। जब वह ध्वनि सूर्य के अन्तराल से टकराकर वापस आती है तो अपने साथ सूर्य की शक्तियों को आत्मसात् किये रहती है जो याजक के शरीर से उतरती चली जाती है। यज्ञ में संकल्प शक्ति और तदनुकुल वेदमन्त्रों की पुनः-पुनः आवृति से मन्त्र का प्रभाव सतेज होता जाता है, छन्दात्मक मण्डल की पुष्टि होने लगती है। वेदमन्त्रों में उदात्त विचार पाये जाते हैं। यज्ञशाला के वातावरण में रोग निरोधक तत्व प्रचुर मात्रा में रहते हैं, जो उधर बैठते हैं उनके रोमछिद्रों में होकर वह ऊर्जा भीतर प्रवेश करती है और जहां भी विजातीय, अनुपयुक्त है उसे निरस्त करती है।

यज्ञोपैथी अर्थात् यज्ञचिकित्सा महत्वपूर्ण उपचार पद्धति है, जिससे शारीरिक ही नहीं मानसिक रोगों को भी जड़ से काटा जा सकता है। व्याधियाँ केवल शारीरिक रोग के रूप में ही नहीं आती वरन् वे आध्यात्मिक - आधिभौतिक - आधिदैविक कारण एवं स्वरूप वाली होती है, प्रारब्धजन्य या दुष्कृतों के फलस्वरूप न केवल रोग अपितु अन्य प्रकार के संकट भी उत्पन्न होते हैं, उनके निराकरण में यज्ञोपैथी जितनी फलप्रद सिद्ध होती है उतनी और कोई पैथी नहीं। यज्ञ से पर्यावरण की पुष्टि, विश्वव्यापी प्रदूषण की निवृत्ति तथा प्राणीमात्र की दैहिक-दैविक-भौतिक चिकित्सा की जा सकती है।

रोग निवारक हवन के लिये तांबे या मिट्टी के पिरोमिड आकार के कुण्ड में दूघवाले वृक्ष की समिधाओं (पीपल, बड़, आम, गूलर, पलाश, बेल, शमी, में से किसी एक ही सूखी लकड़ियों अथवा गाय के गोबर के कण्डे में कपूर से अग्नि जलाकर गोघृत एवं सुगन्धित व रोगनाशक जड़ीबूटियों की हव्य सामग्री की आहुतियाँ सूर्योदय या सूर्यास्त के समय पीछे वर्णित देवयज्ञ (अग्निहोत्र) के मंत्रों से देने के बाद रोगनिवारक मन्त्रों से दी जाती है। आगे के पृष्ठों में विविध रोगों से सम्बन्धित मन्त्रों तथा औषधियों की सूची कर्मकाण्डीय प्रक्रिया सहित दी जा रही है :-

1. सर्व रोग निवारक मन्त्र

पूर्वकथन :-

1. ऋग्वेद मण्डल 10 सूक्त 163 के छः मन्त्रों, अथर्ववेद काण्ड 2 सूक्त 33 के तीसरे से सातवें मन्त्रों (प्रथम और द्वितीय मन्त्र ऋगवेद 10/163 में ज्यों की त्यों है, शेष मन्त्रों में कुछ शब्दों में विभिन्नता है) तथा अथर्ववेद काण्ड 9 सूक्त 8 के 22 मन्त्रों में समस्त शरीर के सभी अंग-प्रत्यंगों से रोगों के निवारण की कामना की गई है। सर्वरोगनिवारक कुल 33 मन्त्र हैं।

2. ऋग्वेद के इन मन्त्रों के मन्त्रद्रष्टा ऋषि "विवृहा काश्यप, देवता-यक्ष्मघ्नम् (रोगनाश) छन्द-अनुष्टुप तथा स्वर गान्धार हैं।

3. अथर्ववेद के इन मन्त्रों के ऋषि भृगु-अंगिरा, देवता-आत्मा एवं वैद्य हैं।

4. इन मन्त्रों में चिकित्सक के संकल्प, उपदेश, आश्वासन, आदेश आदि का वर्णन है, किसी औषधि का उल्लेख नहीं है, केवल अथर्ववेदीय अन्तिम मन्त्र में उदय होते हुए सूर्य की किरणों से रोगनिवारण होने का उल्लेख है।

5. अथर्ववेद के भाष्यकार पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी ने सूक्त के प्रारम्भ में शीर्षक लिखा है :- "सर्वशरीर रोगनाशोपदेशः" अर्थात् समस्त शरीर के रोगों के नाश का उपदेश।

6. ऋग्वेदीय छः मन्त्रों तथा अथर्ववेदीय तीसरे से सातवें मन्त्रों अर्थात् 11 मन्त्रों के अन्तिम चरण में है विवृहामि ते = तेरे रोग को दूर करता हूँ।

7. अथर्ववेद 9/8 के प्रारंभिक पांच मन्त्रों में दूसरी पंक्ति है :-

(क) **"सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे"** एवं मन्त्र 6 से 9 में बहिर्निमन्त्रयामहे अर्थात् तेरे समस्त शरीर के रोग को बाहर निकालते है, फटकारते हैं।

(ख) मन्त्र संख्या 10, 11, 12, 19, 20 में दूसरी पंक्ति है :-

"यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत्"
अर्थात् समस्त रोगों के जहर को तुझसे निकालता हूँ, अलग करता हूँ ।
(ग) मन्त्र संख्या 13 से 18 की दूसरी पंक्ति है :-
"अहिसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम्"
अर्थात् वे महापीड़ायें कष्ट न देती हुई, रोगों को न बढ़ाती हुई छिद्र से बाहर निकल जावें ।
8. इन मन्त्रों की शेष पंक्तियों में शरीर के अंगों तथा रोगों के नाम उल्लिखित हैं ।

ऋग्वेदीय मन्त्र (10/163)

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ।।1।।
हे रोगिन् ! मैं वैद्य तेरी आँखों , नासिका, कानों और ठोड़ी से रोग दूर करता हूँ, जो शीर्षस्थ रोग हैं उसे भी मस्तिष्क और तेरी जिव्हा से दूर करता हूँ ।।1।।

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ।।2।।
हे रोगिन् ! तेरी गर्दन की नाड़ियों, ऊर्ध्वधमनियों हड्डियों और सन्धि (जोड़) से रोग को दूर करता हूँ तथा हाथों में स्थित यक्ष्म को कन्धों से और बाहुओं से दूर करता हूँ ।।2।।

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठो हृदयादधि ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः प्लाशिभ्यो वि वृहामि ते ।।3।।
हे रोगिन् ! तेरी आंतों, गुदाओं, स्थूल आंत, हृदय, दोनों गुर्दों, यकृत और तिल्ली आदि यन्त्रों से यक्ष्म रोग को दूर करता हूँ ।।३।।

ऊरूभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदाद्भंससो वि वृहामि ते ।।४।।
हे रोगिन् ! तेरी जंघाओं, विशेष अस्थि वाले पैरों, एड़ियों, पंजो, नितम्बभागों, कटिभागस्थ, उपस्थ प्रदेश से रोग को दूर करता हूँ ।।4।।

मेहनाद्वनंकरणाल्लोमभयस्ते नखेभ्यः।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ।।5।।
मूत्र लाने वाले मूत्रेन्द्रिय, लोमों, नखों और समस्त शरीर से इस यक्ष्म रोग को दूर करता हूँ ।।5।।

अङ्गादङ्गाल्लोम्नोलोम्नो जातं पर्वणिपर्वणि।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ।।6।।
हे रोगिन्! अंङ्ग-अंङ्ग से, लोम-लोम से और पोर-पोर में उत्पन्न उस यक्ष्मा को समस्त शरीर से दूर करता हूँ ।।6।।

अथर्ववेद {2/33/3से7}

हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम्।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीन्हो यक्नस्ते वि वृहामसि ।।3।।
तेरे हृदय से, क्लोम (फेफड़ों) से, तथा श्वास की नली से, पसलियों से, गुर्दों से, तिल्ली से, यकृत (जिगर) से, तेरे रोग को दूर करता हूँ ।।3।।

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ।।4।।
तेरी आंतों से, गुदा की नाड़ियों से, कोलन (भीतरी मल स्थान) से, उदर में से, तेरी दोनो कोखों से, कोख की थैली से, और नाभि से रोग को उखाड़े देता हूँ ।।4।।

उरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम्।
यक्ष्मं भसद्यं श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते ।।5।।
तेरी दोनो जंघाओं से, दोनो घुटनों से, दोनो एड़ियों से, दोनो पैरों के पंजों से, तेरे दोनों कूल्हों व नितम्बों से और गुह्य स्थान से, कमर और गुप्त स्थानों में हुए रोग को दूर करता हूँ ।।5।।

अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ।।6।।

तेरी हड्डियों से, मज्जा धातु (अस्थि के भीतर के रस) से, पुट्ठों और नाड़ियों से और तेरे दोनों हाथों से, अंगुलियों से और नखों से रोग को मैं जड़ से दूर करता हूँ ।।6।।

अंङ्गे अङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्य ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्च वि वृहामसि ।।7।।

जो रोग तेरे अंग-अंग में, रोम-रोम में, गांठ-गांठ में है । हम तेरे त्वचा के और सब अवयवों में व्यापक रोग को ज्ञान दृष्टि वाले विद्वान के विविध उद्यम से जड़ से उखाड़ते हैं ।।7।।

अथर्ववेद {9/8}

शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम् ।।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ।।1।।

मस्तकशूल, कर्णशूल और विलोहित (पाण्डूरोग) - इन सभी रोगों को हम आपसे दूर करते हैं ।।1।।

कर्णाभ्यां ते कंङ्कूषेभ्यः कर्णशूलं विसल्पकम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ।।2।।

आपके कानों और कानों के भीतरी भाग से कर्णशूल और विसल्पक (विशेष कष्ट देने वाले) रोग को हम दूर करते हैं तथा सभी शीर्ष रोगों को हम आपसे दूर करते हैं ।।2।।

यस्य हेतोः प्रच्यवते यक्ष्मः कर्णत आस्यतः ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोग बहिर्निर्मन्त्रयामहे ।।3।।

जिसके कारण यक्ष्मारोग कान और मुख से बहता है, उन सभी शीर्ष रोगों को हम आपसे बाहर करते हैं ।।3।।

यःकृणोति प्रमोतमन्धं कृणोति पूरूषम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ।।4।।

जो रोग मनुष्य को बहरा और अन्धा कर देते हैं, उन सभी शीर्ष रोगों को हम आपसे दूर हटाते हैं ।।4।।

अंङ्गभेदमङ्गज्वरं विश्वाङ्गयं विसल्पकम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ।।5।।

अंगभंजक, अंगज्वर, अंगपीड़क, विश्वाङ्गय रोग तथा सभी शीर्ष रोगों को हम आपसे दूर करते हैं ।।5।।

यस्य भीमः प्रतीकाश उद्वेपयति पूरूषम् ।
तक्मानं विश्वशारदं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ।।6।।

जिसका भयंकर उद्वेग (प्रतीकाश) मनुष्य को कम्पायमान कर देता है उस शरत्कालीन ज्वर को हम आपसे बाहर करते हैं ।।6।।

य ऊरू अनुसर्पत्यथो एति गवीनिके ।
यक्ष्मं ते अन्तरङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ।।7।।

जो रोग जंघाओं की ओर बढ़ता है और गवीनिका नाड़ियों में पहुँच जाता है उस यक्ष्मा रोग को आपके भीतरी अंगों से हम बाहर निकालते हैं ।।7।।

यदि कामादपकामाद्हृदयाज्जायते परि ।
यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ।।8।।

जो इच्छाकृत कार्यों अथवा बिना कामना से हृदय के समीप उत्पन्न होता है उस कफ को हृदय और अन्य अंगों से हम बाहर निकालते हैं ।।8।।

हरिमाणं ते अंगेभ्योऽप्वामन्तरोदरात् ।
यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ।।9।।

हम आपके अंगों से हरिमा (रक्तहीनता) रोग को, पेट के भीतर से जलोदर रोग को और शरीर के भीतर से यक्ष्मारोग को धारण करने वाली स्थिति को बाहर करते हैं ।।9।।

आसो बलासो भवतु मूत्रं भवत्वामयत् ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ।।10।।

कफ शरीर से बाहर आए, आमदोष मूत्ररूप में बाहर आए । सभी यक्ष्मारोगों के विष को मन्त्र सामर्थ्य द्वारा हम बाहर निकालते हैं ।।10।।

बहिर्बिलं निर्द्रवतु काहाबाहं तवोदरात् ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ।।11।।

काहाबाह अर्थात् फड़फड़ाने वाले रोग आपके पेट से द्रवीभूत होकर बाहर जाएं, सभी यक्ष्मारोगों के विष-विकारों को हम मन्त्र सामर्थ्य से, आपके शरीर से बाहर निकालते हैं ।।11।।

उदरात् ते क्लोम्नो नाभ्या हृदयादधि ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ।।12।।

हम आपके पेट, "क्लोम" (फेफड़ों), नाभि और हृदय से सभी रोगों के विषरूप विकारों को शरीर से बाहर निकालते हैं ।।12।।

याः सीमानं विरूजन्ति मूर्धानं प्रत्यर्षणीः ।
अहिसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ।।13।।

जो सीमा भाग को पीड़ित करते हैं और सिर तक बढ़ते जाते हैं वे रोग दूर होकर रोगी के लिए कष्टकारक न होते हुए शरीर के रन्ध्रों से द्रवरूप होकर बाहर निकलें ।।13।।

(मं. क्र. 14 से 18 तक अमर्यादित रूप से बढ़ी हुई हड्डियों के पीड़ादायक हिस्सों को द्रवीभूत करके बाहर निकालने का उल्लेख है। यह विद्या बहुत उपयोगी हो सकती है, किन्तु वर्तमान समय में यह शोध का विषय है।)

या हृदयमुपर्षन्त्यनुतन्वन्ति कीकसाः ।
अहिसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ।।14।।

जो हृदय और हँसुली (ग्रीवास्थि) की 'कीकस' नामक हड्डियाँ हृदय क्षेत्र मे फैलती हैं, वे सभी वेदनाएं दोषरहित और कष्टरहित (हिंसारहित) होती हुई शारीरिक रन्ध्रों से द्रवरूप होकर बाहर निकलें ।।14।।

याः पार्श्वे उपर्षन्त्यनुनिक्षन्ति पृष्टी : ।
अहिसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ।।15।।

जो अस्थियां पार्श्व (पसलियों) में पाई जाती हैं और पीठ भाग तक फैलती हैं, वे रोगरहित हों और मारक न बनती हुई शरीरिक छिद्रों (रन्ध्रों) से द्रवीभूत होकर बाहर निकले ।।15।।

यास्तिरश्चीरुपर्षन्त्यर्षणीर्वक्षणासु ते ।
अहिसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ।।16।।

जो अस्थियाँ तिरछी जाती हुई आपकी पासलियों में प्रवेश करती हैं, वे भी रोगरहित और अमारक होकर द्रवीभूत होकर बाहर निकल जाएँ ।।16।।

या गुदा अनुसर्पन्त्यान्त्राणि मोहयन्ति च ।
अहिसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ।।17।।

गुदा भाग तक फैली हुई जो अस्थियाँ आंतों को अवरूद्ध करती हैं, वे भी बिना कष्ट दिए रोगविहीन होकर शारीरिक छिद्रों से बाहर निकल जाएँ ।।17।।

या मज्ज्ञो निर्धयन्ति परूंषि विरूजन्ति च ।
अहिसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ।।18।।

वे अस्थियाँ जो मज्जा भाग को रक्तहीन करती हैं और जोड़ों मे वेदना पैदा करती हैं, वे बिना कष्ट दिए रोगरहित होकर शारीरिक रन्ध्रों से बाहर निकलें ।।18।।

ये अङ्गानि मदयन्ति यक्ष्मासो रोपणास्तव ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ।।19।।

यक्ष्मारोग को दूर करने वाली और अंगो पर मांस की वृद्धि करने वाली जो औषधियाँ आपके अंगो को आनन्दित करती है, उनसे सभी यक्ष्मारोगों के विष-विकारों को हम आपसे दूर करते हैं ।।19।।

विसल्पस्य विद्रधस्य वातीकारस्य वालजेः ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ।।20।।

विकल्प (पीड़ा), विद्रध (सूजन), वातीकार (वातरोग) और अलजि इन सभी रोगों के विष को हम आपके शरीर से, मन्त्र प्रयोग से दूर हटाते हैं ।।20।।

पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंससः ।
अनूकादर्षणीरूष्णिहाभ्यः शीर्ष्णो रोगमनीनशम् ।।21।।
आपके पैरो, घुटनों, कूल्हों, कटि (गुप्त भाग) रीढ़, गर्दन की नाड़ियों और सिर से फैलने वाली आपकी पीड़ाओं को हमारे द्वारा विनष्ट कर दिया गया है ।।21।।

सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ।
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोंगभेदमशीशमः ।।22।।
आपके सिर पर उदय होते सूर्यदेवने अपनी किरणों से रोग को विनष्ट किया है और चन्द्रदेव आपके कपाल भाग तथा हृदय के अंग भेद को शान्त कर देते हैं ।।22।।

शन्नो देवीरभीष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ।। अथर्व 1—6—1
दिव्य गुण वाले जल हमारे अभीष्ट सिद्धि के लिए और पान व रक्षा के लिए सुखदायक होवें और हमारे रोग की शान्ति के लिए तथा भय दूर करने के लिए सब ओर से वर्षे ।

अनुसूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते ।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ।। अथर्व 1—22—1
तेरे हृदय के सन्ताप और शरीर का पीलापन सूर्य के साथ-साथ उड़ जावे । निकलते हुए लालरंग वाले सूर्य के प्रसिद्ध रंग से तुझको सब प्रकार से हम पुष्ट करते हैं ।

अदो यदघावत्यवत्कमधि पर्वतात् ।
तत् ते कृणोमि भेषजं सुभेषजं यथाससि ।। अथर्व 2—3—1
हिम वाले पर्वतों से नदियां बहती रहती है और अन्नादि औषधियों को हराभरा करके अनेक विधि से जगत का पोषण करती है । इसी प्रकार औषध को सुऔषध बनाकर शारीरिक और मानसिक रोगों की निवृत्ति करके सदा उपकारी बनें ।

उद्यन्नाहदित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः।
ये अन्तः क्रिमयो गवि ।। अथर्व 2—32—1
उदय होता हुआ प्रकाशमान सूर्य उन कीड़ों को मारे और अस्त होता हुआ अपनी किरणों से मारे जो कीड़े पृथ्वी के भीतर है । इसी प्रकार शरीर के रोग के कीड़ों का नाश होकर मन हृष्ट और शरीर पुष्ट होता है ।

दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिष्यन्तो दक्षमाणाः सदव।
मणिं विष्कन्धूषदूणं जङ्गिडं विभृमो वयम्।। अथर्व 2—4—1
बड़ी आयु के लिये और बड़े रमण के लिये किसी को न सताते हुए और सदा ही वृद्धि करते हुए हम लोग विघ्ननिवारक और प्रशंसनीय शरीर भक्षक रोग के निगलने वाले औषध को धारण करें ।

निवेदन

1. आगे जहाँ-जहाँ हवन करें लिखा है वहाँ जलती हुई ज्वाला वाली अग्नि में आहुतियाँ दें ।
2. जहाँ हवन धूप या धूनि लिखा है वहाँ ज्वाला या धुआँरहित अंगारे पर आहुतियाँ दें ।

यज्ञोपैथी के प्रकाशन में सहयोगी यज्ञ के लिए
समर्पित व्यक्तित्व
नरशी गोविन्द पटेल
घाटकोपर, मुम्बई
मो. : 09867697743

सर्व रोगनाशक हवन सामग्री

(01 किलो)

क्र.	नाम	विभिन्न नाम	गुणधर्म	मात्रा
1.	अगर	कालाअगुरू, विश्वरूपक, Eagle Wood	कान्तिवर्धक, कृमि-कुष्ठ, कफ नाशक, दैवी प्रकोप नाशक	10
2.	अजश्रृंगी	मेढ़ासिंगी, वातीकृतनाशिनी, अराटकी, पूर्तिगन्धा, तिलपर्णी, उग्रगन्धा, Gynandropsis Gynandraclinn	वातरोग, कृमिनाशक, पक्षघात चिकित्सक, विषध्न	05
3.	अडूसा	वासा, वृष, अरूसा, बसौटा, Adhatoda	कफनिसारक, क्षयनाशक, रक्तपित्तनाशक	05
4.	अर्जुन	ककुभ, कौह, कहुआ, जुमरा, Terminalia Arjuna	रक्तस्तम्भक, हृदयविकारनाशक, प्रमेहनाशक	05
5.	असगंध	अश्वगन्धा, वाराहकर्णी, अकसन, Winter Cherry	वातकफनाशक, रसायन, वाजीकारक	05
6.	आंवला	आमलकी, धात्रीफल, शीतफला, Emblic Myrobalains	त्रिदोषहर, आयुवर्द्धक, नेत्र विकारनाशक	10
7.	आम के पत्ते	आम्रपर्ण, अंब, Mango Leeves	रक्तविकार तथा प्रमेहनाशक, खांसी एवं ज्वर नाशक	05

क्र.	नाम	विभिन्न नाम	गुणधर्म	मात्रा
8.	इंद्र जौ	कुट्ज, कुडा, कुरैया, लिसानुल, असाफीर, हुलुबब	वात-कफ, शूलनाशक बवासीर में लाभप्रद, ज्वरघ्न	10
9.	उड़द	माष, रथजिता, Phascoolus mango Linn	बलकारक, वीर्यवर्द्धक, श्वास-श्रम, बवासीर नाशक	10
10.	इलायची (बड़ी)	दिव्यगन्धा, कांता, वृहदेला, The Gereater Cardeman	दुर्गन्धनाशक, श्वास-कासहर मूत्ररोगनाशक	10
11.	कचूर	कर्चूर, द्राविड़, शटी, गन्धसारम, Zedoary	कुष्ठ, बवासीर तिल्ली, मिर्गी आदि में लाभदायक	20
12.	कपूर	कर्पूर, धनसार, चन्द्र, Camphar	दुर्गन्धनाशक, क्षत को भरने वाला, जुकाम आदि में लाभप्रद	05
13.	कपूरकचरी	गन्धपलाशी, Hedychaium Spicatum	कफवातनाशक, दुर्गन्धनाशक, शोधक, ज्वरघ्न, शूलनाशक	10
14.	कमलगट्टा	पदम, अरविन्द, पुरइन, पम्पोश, Sacred Lotus	दाहप्रशमक, मेध्य, हृद्य, प्रजास्थापन, त्वचादोषहर, ज्वरघ्न, विषघ्न	20
15.	काजू	काजूत, बादामेफिरंगी, Cashew nutt	वातनाशक, मस्तिष्क एवं नाड़ी बल्य, पौष्टिक, रक्त शोधक, वाजीकारक	10
16.	कायफल	कटफल, कैफर, The box myrtle	शिरोविरेचन, श्वासकासनाशक, रक्त स्तम्भक	05

क्र.	नाम	विभिन्न नाम	गुणधर्म	मात्रा
17.	कुलंजन	कुलिंजन, सुगन्धा, उग्रगन्ध Greater Galangal	वातकफनाशक, दुर्गन्धनाशक, दीपन, पाचन	10
18.	कुष्ठ	कूट, गद, पाकल, Costus	कफनिस्सारक, श्वासहर, शुक्रशोधक, जन्तुघ्न	10
19.	खस	उशीर, सेव्य, वीरण, सींक की जड़ Cus-Cus	मूत्रल, दाह, तृष्णाशामक, वमन-अतिसारनाशक	05
20.	खोपरा	नारियल, नारिकेल, Coconut	शीतल, पौष्टिक, रक्तविकारनाशक, वातपित्तशामक	20
21.	गिलोय	गुडूची, अमृता, गुर्च, अमृतवल्ली, Tinospora Cordifalia	आयुवर्द्धक, त्रिदोषशामक, ज्वरघ्न, कोढ़, कृति-विषनाशक	30
22.	गुलाब	तरूणी, शतपत्री, गुलेसुर्ख, Rose	दुर्गन्धनाशक, शोथहर, दाहशामक, ज्वरघ्न, मनः प्रसादकर	10
23.	गूगल	गुग्गुलु, कौशिक, पलडकष, महिषाक्ष, देवधूप, Bdellium	मनः प्रसादकर सुगन्धित क्षत को शीघ्र भरने वाला।	30
24.	गूलर	उदुम्बर, जन्तुफल, यज्ञाङ्ग Country Eig	रक्तशोधक, नजला, ज्वर, बवासीर-क्षय, पथरीनाशक, कफपित्तनाशक, गर्भाशयशोथहर, दाहप्रशामक	10
25.	गोखरू	गोक्षुर, हस्तिचिंघाड़ Caltrops	श्वासकासहर, कृमिघ्न, शोथहर, बलकारक	10

क्र.	नाम	विभिन्न नाम	गुणधर्म	मात्रा
26.	चंदन	भद्रश्री, श्रीखंड, मलयज, संदल Sandal	सौमनस्यजनन, रक्तविकारनाशक, दाहनाशक, कफनिस्सारक, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न	20
27.	चांवल	तंडुल, Rise	पेचिशनाशक, बुद्धिवर्द्धक, शोथहर	10
28.	चित्रक	चिता, दहन, अग्नि, Plumbago	अर्शोघ्न, शूलप्रशमन, पाचन, दीपन	10
29.	चिरचिटा	उपामार्ग, शिखरी, खरमंजरी, Prickly chaff flower	मूत्रल, पथरीनाशक, विषघ्न, अम्लनाशक, रक्तवर्द्धक, शोथहर, शिरोविरेचन	10
30.	चिरायता	किराततिक्त, अनार्यतिक्त, Chireta	रक्तशोधक, कृमिनाशक, विषमज्वरनाशक	10
31.	चिरौंजी	प्रियाल, चारबीज, स्नेहबीजेम, The cuddapah Almond	वात्तपित्तनाशामक, धातुवर्द्धक, ज्वरनाशक, खुजलीनाशक	05
32.	छड़ीला	शैलेय, शिलापुष्प, बुढ़ना Stone Flower	त्वचारोगनाशक, ज्वरघ्न, दाहशामक, कफनिस्सारक, पथरीनाशक	10
33.	छूहारा	Date	पथरीनाशक, लकवारोधक, श्वासहर, बलदायक	20
34.	जटामासी	बालछड़, भूतजटा, सुलोमशा, छड़, नलदी, Nard	मानसदोषहर, हृदय विकारनाशक, रक्त स्तम्भक, ज्वरघ्न, दाहप्रशामक मूत्रल, शोथहर पौष्टिक	20

क्र.	नाम	विभिन्न नाम	गुणधर्म	मात्रा
35.	जामुन	जम्बु, काला जाम, Jambol	गुठली, मधुमेहनाशक, रक्तातिसारशामक, प्रदरनाशक	20
36.	जायफल	जातीफल, Nutmeg	तिल्ली, लकवा, गठिया में लाभदायक, कृमिनाशक, वातनाशक, वेदनास्थापन	05
37.	जावित्रि	जातिपत्री, जायपत्री, Mace	सौंदर्यवर्द्धक, कफघ्न, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न	05
38.	जीवन्ती	शाकश्रेष्ठा, डोडीशाक, खरखोड़ी, Laptadenia, Reticulata	रसायन, ज्वरघ्न, त्रिदोषहर, दाहप्रशमन, बलप्रद, मूत्रल, हृदय के लिये लाभप्रद	10
39.	जौ	यव, Barley	कांतिवर्द्धक, रक्तशोधक, चर्मरोगनाशक	10
40.	तालीसपत्र	धात्रीपत्र, पत्राढ़य, Yew	गुल्म-श्वास, क्षय, रक्तविकार, मुखरोगनाशक	10
41.	तिल (काले)	तिल्ली, कुंजद, होमधान्य Ginelly	वीर्यवर्धक, बुद्धिवर्धक, अग्निवर्धक, अग्निदीपक, त्रिदोषनाशक	40
42.	तुलसी	सुरसा, शुक्ल, तथा कृष्ण Holy Basil	सुगंधित, कफवातनाशक, जवरघ्न, कृमिघ्न, दुर्गन्धनाशक, रक्तशोधक, स्वेदजनन, शोथहर	05

क्र.	नाम	विभिन्न नाम	गुणधर्म	मात्रा
43.	तेजपत्र	पत्रज, तमालपत्र, Indian Cinnaman	मस्तिष्क बलदायक, आमाशय बलप्रद, सौमनस्यजनन, सुगन्धित	05
44.	दालचीनी	बहुगन्धा, दारूसिता, Cinnaman	मूत्रजनक, यक्ष्मानाशक, कृतिनाशक, श्लेष्महर, उत्तेजक	10
45.	दूब	दूर्वा, शतपर्वा, गोलोमी, आषाढ़ा, सहमाना, सहस्रकाण्ड, शतांकुरा, देवजाता Creeping Dog's tooth	कफपित्तशामक, दाहप्रशमन, तृष्णानिग्रहण, रक्तस्तम्भक, रक्तशोधक, कुष्ठघ्न, जीवनीय विषघ्न	10
46.	देवदारू	भद्रदारू, कैटा, चीड़, पूतद्रु, Cader	श्वासमार्गशोधक, ज्वरघ्न, सर्वरोगनाशक, दुःस्वप्ननाशक, रक्षोघ्न	10
47.	नागकेसर	नागपुष्प, नागेसर, नारेमुष्क, Calera's Saffron	दुर्गन्धनाशक, विषघ्न, पेट के कीड़े को मारने वाला, अर्शोघ्न, पुत्रद, ज्वरघ्न	10
48.	नागरमोथा	नागरमुस्ता, चक्रांक्षा, कलापिनी, मुष्कजंगी, Cypeus scariosns	कृमिनाशक, खांसी में लाभप्रद कफघ्न, रक्तप्रसादन, बल्य	20
49.	निर्मली	कतक, पयः प्रसादिनी, Clearing nut	कफ वातशामक, जलशोधक, मूत्रजनक, नेत्रविकार में लाभप्रद	10

क्र.	नाम	विभिन्न नाम	गुणधर्म	मात्रा
50.	नीम (निम्बोली)	निम्ब, आजाददरख्ते, Mangosa	प्रशमन, ज्वरघ्न, नेत्रविकार में लाभप्रद, कफ पित्तशामक, रोचन, कृमिघ्न, रक्तशोधक, दाहनाशक	10
51.	पलाश	पलास, किंशुक, क्षारश्रेष्ठ, ढाक, छिडल, खाखरो, पल पुष्पः Bastard teak	रक्तस्तम्भन, मूत्रल, ज्वरघ्न, श्वेतप्रदरनाशक	10
52.	पानड़ी	जभी, पर्पटी, पाची	सुगन्धित, वायुनाशक, रक्तस्रावरोधक, मनः प्रसादकर	10
53.	पित्तपापड़ा	पर्पट, शाहतरा, धमगजरा, Eiveleaved Fumitory	पित्तनाशक, तृष्णानाशक, ज्वरघ्न, रक्तशोधक	10
54.	पिप्पली	पीपल, मागधी, वैदेही, केषा, शौण्डी, उषणा, उपकुल्या, कोला, Long paper	वात-कफशामक, शूलप्रशमन, रक्तवर्धन, श्वासहर, झिरी, विरेचन, रसायन	10
55.	पिस्ता	Pirtacia vera	वीर्यवर्धक, हृदय बुद्धिवर्धक	10
56.	पुनर्नवा	पृश्चीर, शोथघ्नी, गदहपूरना, ठीकरी, इटसिट, खापराराती, Spreading Hog weed	त्रिदोषहर, शोथहर, हृद्य, रक्तवर्धक, कासहर, विषघ्न, ज्वरघ्न, रसायन	10
57.	पुष्करमूल	काश्मीर, कुष्ठभेद, पोहकरमूल, Indula Rasemosa Hook	कफ-वातनाशक, वेदनास्थापन, पार्श्वशूलनाशक, हृद्य, ज्वरघ्न	10
58.	बनफ्सा	बनफशा, Sweet violet	ज्वरघ्न, श्लेष्मानिस्सारक, पित्तसंशमन, मस्तिष्क स्नेहन, निद्राकारक	20

क्र.	नाम	विभिन्न नाम	गुणधर्म	मात्रा
59.	बहेड़ा	बिभीतक, अक्ष, कर्षफल, कलिद्रुम Beleric Myrobalan	श्वास, कासनाशक, शोथहर, रक्तस्तम्भक, ज्वरघ्न, कफघ्न, त्वचारोगनाशक	10
60.	बादाम	वाताद Sweet Almond	वातनाशक, दन्त्य, शुक्रजनन, बाजीकर, बुद्धिवर्धक, बलकारक	20
61.	बायबिडंग	विडङ, चित्रतण्डुल, Embelia	दीपन, पाचन, उदरकृमि नाशक, शिरोविरेचन, नाड़ी बल्य, रक्तशोधक, रसायन, कुष्ठनाशक	10
62.	बेल	बिल्व, श्रीफल, Benal Guince	रक्तस्तम्भक, बल्य, हृद्य	10
63.	ब्राह्मी	मण्डूकपर्णी, माण्डूकी, Indian Penny Wart	बुद्धिवर्धक, आयुवर्धक, शोथनाशक, रक्तशोधक, मूत्रल, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न	20
64.	मकोय	काकमाची, वायसी, काकमाता, कवैया Garden Night Shade	सन्तापहर, दोषविलोमकर्ता, मूत्रल, सूजनहर, जलोदर, रोगहर	20
65.	मखाना	पद्मबीज, पानीयफल, जवेर, Foxnt	त्रिदोषनाशक, कफनिस्सारक, शुक्रमक, हृद्य, प्रस्तंभकमेहहर	10
66.	मालकांगनी	ज्योतिष्मती, कंगुनी, मींजनी, Staff tree	वाजीकर, रक्तप्रसादन, कफनिस्सारक, बुद्धिवर्धक	10

क्र.	नाम	विभिन्न नाम	गुणधर्म	मात्रा
67.	मुण्डी	गोरखमुण्डी, श्रावणी, गुडीया Sphaeranthns Inines	त्रिदोषनाशक, शोथहर, मूत्रल, रक्तशोधक, हृदयोत्तेजक, मूत्रल, कफघ्न, जवरघ्न, रसायन	20
68.	मुनक्का	द्राक्षा, गोस्तनी, कपिशा, दक्ष, दाख, Vitisvinifera	वातपित्तनाशक, ज्वरनाशक, रक्तप्रसादन, श्वासकासहर, क्षयनाशक, वाजीकर	10
69.	मुलहठी	मुलेठी, मधुयष्टि, जेठीमध, Liquarice	वातपित्तशामक, कफनिस्सारक, शुक्रवर्धक, शोथहर, चर्मरोगनाशक	10
70.	मूंग	मूदग, Green Gram	ज्वरनाशक, शक्तिवर्धक, चर्मरोगनाशक	20
71.	यूकेलिप्टस पत्ते	तैलपर्णी, Eucalyptus glalrulus	जीवाणुनाशक, कफघ्न, मूत्रजनन, ज्वरनाशक	10
72.	राल	शालनिर्यास, सालोद, साखू, धूपवृक्ष, Sal tree resin	शोथहर, श्वासकासहर, प्रदरनाशक, कुष्ठघ्न, रक्तशोधक	10
73.	लौंग	लवंग, देवकुसुम, Cloves	कफपित्तनाशक, रूचिवर्धक, शूलप्रशमन, श्लेष्मनिस्सारक, श्वासहर, वाजीकरण, मूत्रजनन, ज्वरघ्न, नेत्रों के लिये हितकर, खांसी, उदरपीड़ा, क्षयरोगनाशक	10

क्र.	नाम	विभिन्न नाम	गुणधर्म	मात्रा
74.	लोबान	लोहबान, साम्ब्राणी, Gum Benjamin	जंतुघ्न, कफवातशामक, पित्तवर्धक, दुर्गन्धनाशक, वेदनाहर, कफनिस्सारक, मूत्रजनन, गर्भाशयशोथहर, वाजीकारण, जवरघ्न	10
75.	वच	बचा, घोड़बच, उग्रगन्धा, गोलोमी, रक्षोहनी, शपर्बिका, बछ, Sweet flag, Valamus root	शोथहर, वातकफशामक, पित्तवर्धक, शूलप्रशमन, हृदयोत्तेजक, कण्ठ्य, मूत्रजनन, स्वेदजनन, ज्वरनाशक	10
76.	शंखपुष्पी	शंखाहुली, क्षीरपुष्पी, Convolvulus Pluricaulls	त्रिदोषहर, वातपित्तनाशक, बुद्धिवर्धक, हृद्य, रक्तस्तम्भन, कफनिस्सारक, प्रजा स्थापन, कुष्ठहन, त्वचारोगनाशक, दाहप्रशमन, रसायन	10
77.	शतावरी	सतावर, शतमूली, अतिरसा, हिरण्यश्रृंग, ऋषभक, गंगतरंगू, Wild Asparagus	वातपित्तशामक, बल्य, रसायन, मूत्रल, गर्भपोषक, शुक्रलमध्य, हृद्य, चक्षुष्य, रक्षोघ्न	10
78.	शमी	बृहत्पलाशा, ऋतावरी, सुमगा, जंडी, वर्षवृद्धा Prospopis spicigera	शान्तिकारक, विषनाशक, भ्रमनाशक, दाहशामक, रक्त भार कम करने वाला।	10

क्र.	नाम	विभिन्न नाम	गुणधर्म	मात्रा
79.	सर्पंगन्धा	धवलबरूआ, धनमखा, झाड़मानिक, पतालगरूड़, चादड़, Rauwotfia Serpentina	निद्रल, पित्तसारक, विषघ्न, उन्मादनाशक	05
80.	सुगन्धबाला	तगर, मुष्कबाला, Indian Valerion	त्रिदोषहर, वेदनास्थापन, कुष्ठघ्न, मेध्य, शूलप्रशमन, कफघ्न, चक्षुष्य	10
81.	सौंफ	मिश्रेया, Ani Seed	रूचिकारक, वीर्यजनक, रक्तपित्तनाशक, दाहशामक	10
82.	हरड़	हरीतकी, अभया, पथ्या, शिवा, अव्यथा, हर्रा, Chelrilic Myrobalans	त्रिदोषहर, दीपन, पाचन	10
83.	हरमल	इस्बंद, हुर्मुल, इस्पन्द, Syrian Rue	वातकफनाशक, कृमिहन, वाजीकर, कोष्ठवात, प्रशमन, वेदनास्थापन	05
84.	हाउबेर	हपुषा, हुबेर, पामा, मुखमरहल, Juniper Berries	विशोधक, कफवातशामक, मूत्रल, मूत्रमार्ग, कफनिस्सारक, नाड़ी, उत्तेजक	30

नोट :-

१. उपर्युक्त मात्रा ०१ एक किलो सामग्री के लिये है ।

२. हवन करते समय घी और खाण्ड (शक्कर) अथवा शहद (मधु) पर्याप्त मिलाये ।

2. हृदय रोग निवारक सूक्त

{पीलिया (पाण्डु, हलीमक, हरिमा, कामला), क्षेत्रीय रोगनिवारक}

पूर्वकथन :-

1. ऋग्वेद मण्डल 1 सूक्त 50 के ग्यारहवें, बारहवें मन्त्रों में हृदयरोग को नष्ट करने की प्रार्थना है। इन मन्त्रों के ऋषि प्रस्कण्व तथा देवता - सूर्य है।

2. अथर्ववेद काण्ड 1 सूक्त 22 के 4 मन्त्रों तथा अथर्ववेद काण्ड 3 सूक्त 7 के 7 मन्त्रों को विद्वानों ने हृदयरोग निवारण में उपयोगी माना है एवं क्षेत्रिय (आनुवंशिक) रोग निवारण का भी उपदेश है।

3. ऋग्वेदीय मन्त्र में हृदयरोग की स्वयं की प्रार्थना है, किन्तु अथर्ववेदीय 1/22 के 4 मन्त्रों में सद्वैद्य (चिकित्सक) का कथन है।

4. इन मन्त्रों में नारंगी रंग वाली उदयकालिक सूर्य किरणों से हृदयरोग दूर करने का प्रतिपादन है, अन्य हलीमक-पाण्डु-कामला रोग भी दूर होने का निर्देश है (उदयकाल में भिन्न समय में नारंगी रंग के कांच, अभ्रकपटल या वस्त्र (परदे) से निर्झरित करके हृदयरोगी पर पड़ने देना चाहिये), लाल रंग की गाय भी उपयोगी है।

5. मृगसिंग को भी हृदयविकार नाशक कहा गया है।

ऋग्वेदीय मन्त्र

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।
हृद्रोग मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ।

उदय को प्राप्त हुआ प्रकाश का विस्तारक जीवनदाता सूर्य मेरे हृदयरोग तथा पीलिया रोग को नष्ट करे।

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि ।।

मैं अपने पीलिया रोग को शुकों (तोतों), वृक्षों एवं हल्दी आदि में स्थापित करता हूँ।

अथर्ववेद (1/22)

(ऋषि-ब्रह्मा । देवता-सूर्य, हरिमा, हृद्रोग । छन्द-अनुष्टुप)

अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते ।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ।।1।।

हे रोगग्रस्त मनुष्य ! हृदय रोग के कारण आपके हृदय की जलन तथा (पीलिया या रक्ताल्पता का विकार) आपके शरीर का पीलापन सूर्य की ओर चला जाए। रक्त वर्ण की गौओं अथवा सूर्य की रक्तवर्ण की रश्मियों के द्वारा हम आपको हर प्रकार से बलिष्ठ बनाते हैं।।1।।

परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि ।
यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत् ।।2।।

हे व्याधिग्रस्त मनुष्य ! दीर्घायुष्य प्राप्त करने के लिए हम आपको लोहित वर्ण के द्वारा आवृत करते हैं, जिससे आप रोगरहित होकर पाण्डू रोग से विमुक्त हो सकें।।2।।

या रोहिणीर्देवत्या गावो या उत रोहिणीः ।
रूपंरूपं वयोवयस्ताभिष्ट्वा परिदध्मसि ।।3।।

देवताओं की जो रक्तवर्ण की गौएं हैं अथवा रक्तवर्ण की रश्मियां हैं उसके विभिन्न स्वरूपों और आयुष्यवर्द्धक गुणों से आपको आच्छादित (उपचारित) करते हैं।।3।।

शुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ।
अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि ।।4।।

हम अपने हरिमाण (पीलिया या शरीर को क्षीण करने वाले रोग) को शुको (तोतों) रोपणाका (वृक्षों) एवं हरिद्रवों (हरी वनस्पतियों) में स्थापित करते हैं।।4।।

अथर्ववेद (3/7)
{ऋषि-भृग्वंगिरा देवता-यक्ष्मानाशन (1—3 हरिण, 4 तारागण, 5 आपः, 6—7 यक्ष्मनाशक) छन्द - अनुष्टुप्, 1 भुरिक्, अनुष्टुप्}

इस सूक्त में 'क्षेत्रिय' रोगों के उपचार का वर्णन है। क्षेत्रिय रोगों का अर्थ सामान्य रूप से आनुवांशिका रोग लिया जाता है। गीता में 'क्षेत्र' शरीर को कहा गया है। शरीर में बाहरी विषाणुओं से कुछ रोग पनपते हैं। कुछ रोगों की उत्पत्ति (आनुवांशिक अथवा अन्य कारणों से) शरीर के अन्दर से ही होती है, इसलिए क्षेत्र (शरीर) से उत्पन्न होने के कारण उन्हें क्षेत्रीय रोग कहा गया है। इन रोगों की ओषधि 'हरिणस्य शीर्ष' आदि में कही गयी है, जिसका अर्थ हिरण के सिर के अतिरिक्त हरणशील किरणों का सर्वोच्च भाग 'सूर्य' भी होता है। विषाण का अर्थ सींग तो होता ही है - हिरण के सींग (मृगश्रृंग) का उपयोग वैद्यक में होता है। विषाण का अर्थ कोषों में कुष्ठादि की ओषधि तथा 'विशेष मदकारी' भी है। सूर्य के सन्दर्भ में ये अर्थ लिए जा सकते हैं। उपचारों (मन्त्र 4 से 7) में आकाशीय नक्षत्रों तथा जल-रस आदि का भी उल्लेख है। इन सबके समचित संयोग से उत्पन्न प्रभावों पर शोध अपेक्षित है -

हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम् ।
स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत् ।।1।।

द्रुतगति से दौड़ने वाले हरि (हिरण या सूर्य) के शीर्ष (सर्वोच्च) भाग में रोगों को नष्ट करने वाली ओषधि है। वह अपने विषाण (सींग अथवा विशेष प्रभाव) से क्षेत्रिय रोगों को विनष्ट कर देता है।।1।।

अनु त्वा हरिणा वृषा पद्भिश्चतुर्भिरक्रमीत् ।
विषाणे वि ष्य गुष्पितं यदस्य क्षेत्रियं हृदि ।।2।।

यह बलशाली हरिण (हिरण या सूर्य) अपने चारों पदों (चरणों) से तुम्हारे अनुकूल होकर रोगों पर आक्रमण करता है। हे विषाण ! आप इसके (पीड़ित व्यक्ति के) हृदय में स्थित गुप्त क्षेत्रिय रोगों को विनष्ट करें।।2।।

अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिवच्छदिः ।
तेना ते सर्वं क्षेत्रियमङ्गेभ्यो नाशयामसि ।।3।।

यह जो चार पक्ष (कोनो या विशेषताओं) से युक्त छत की भाँति (हिरण का चर्म अथवा आकाश) सुशोभित हो रहा है, उसके द्वारा हम आपके

अंगो से समस्त क्षेत्रिय रोगो को विनष्ट करते हैं।।3।।

अमू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके ।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ।।4।।

अन्तरिक्ष में स्थित विचृत ('मूल' नक्षत्र या प्रकाशित) नामक जो सौभाग्यशाली तारे हैं, वे समस्त क्षेत्रिय रोगों को शरीर के अंगों से पृथक करें।।4।।

आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ।।5।।

जल समस्त रोगों की ओषधि है। स्नान-पान आदि के द्वारा यह जल ही ओषधि रूप में सभी रोगों को दूर करता है। जो अन्य ओषधियों की भांति किसी एक रोग की नहीं, वरन् समस्त रोगों की ओषधि है, हे रोगिन ! ऐसे जल से तुम्हारे सभी रोग दूर हों।।5।।
(ओषधि अथवा मन्त्रयुक्त जल के प्रयोग का संकेत प्रतीत होता है।)

यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे ।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत् ।।6।।

हे रोगिन् ! बिगड़े हुए स्रवित रस से आपके अन्दर जो क्षेत्रिय रोग संव्याप्त हो गया है, उसकी ओषधि को हम जानते हैं। उसके द्वारा हम आपके क्षेत्रिय रोग को विनष्ट करते हैं।।6।।
(शरीर मे विविध प्रकार के रस स्रावित होते हैं। जब वे रस, कायिक तन्त्र बिगड़ जाने से दोषपूर्ण हो जाते हैं, तो क्षेत्रिय रोग उत्पन्न होते हैं। रोगों के मूल कारण के निवारण का संकल्प इस मन्त्र में व्यक्त हुआ है।)

अपवासे नक्षत्रणामपवास उषसामुत ।
अपास्मत् सर्वंदुर्भुतमप क्षेत्रियमुच्छतु ।।७।।

नक्षत्रों के दूर होने पर उषाकाल में उषा के चले जाने पर दिन में समस्त अनिष्ट हमसे दूर हो। क्षेत्रिय रोगादि भी इसी क्रम में दूर हो जाएँ।।७।।

हृदय - विकारों पर हवन धूप

यज्ञाग्नि या गाय के गोबर के कण्डे की आग (अंगारों) पर कोई एक - दो अथवा सभी का मिश्रण डालकर मुख और नाक के द्वारा धुआं ग्रहण करें।

1) अर्जुन छाल का चूर्ण गोघृत से मिलाकर ।

2) पुष्करमूल का चूर्ण गोघृत से मिलाकर ।

3) जटामांसी (बालछड़) गोघृत से मिलाकर ।

4) दशमूल की सभी औषधियाँ और यवक्षार गोघृत से मिलाकर ।

यज्ञ के द्वारा चिकित्सा का एकमात्र स्थान

वैदिक उपचार केन्द्र

डॉ. तारासिंह आर्य
मीरा रोड, बोरीवली क्षेत्र, भायखला, मुम्बई
मो. : 07021594735

3. रक्तजरोग निवारक सूक्त

(कैंसर व मधुमेह निवारक भी)

पूर्वकथन :-

1. रक्तजरोग के अन्तर्गत किलास (श्वेत तथा गलित कुष्ठ), विद्रध (फोड़ा, फुन्सी तथा गांठ गिल्टी) और विसर्प (त्वचा एवं मांस में विकार) रोगों का समावेश है।

2. इन मन्त्रों में आये बलास शब्द का अर्थ कुछ भाष्यकारों ने बल के गिराने वाले सन्निपात कफ आदिरोग, लोहित का अर्थ रूधिर विकार, सूजन आदि तथा विसल्पक का अर्थ शरीर में फैलने वाले हड़फूटन रोग किया है।

3. कुछ विद्वानों ने रामा, (काली तुलसी) कृष्णा (इन्द्रायण या पिप्पली) और असिक्नी (असिता) को नीलिनी INDIGO (नील), प्रियंगु औषधि का पर्याय माना है तो कुछ ने तुलसी का। सुश्रुत ने इसे कुष्ठ रोगनाशक कहा है। आचार्य सायण ने रामा शब्द से भृंगराज औषधि का ग्रहण किया है।

4. अथर्ववेद 6/127/2 में "चीपुद्रु" को रक्तजरोगनिवारक औषधि कहा है जिसका अभिप्राय विद्वानों ने पीतद्रु (देवदारू-चीड़) वृक्ष कहा है।

5. अथर्ववेद 19/14 में रक्तजरोगनाशक "आंजन" नामक औषधि का उल्लेख है। कुछ लोग आन्जन नामक वृक्ष विशेष का ग्रहण करते हैं जो त्रिककुद पर्वत पर तथा यमना प्रदेश (त्रैककुद तथा यामुन) में होता है। शतपथ ब्राह्मण एवं कौटिल्य अर्थशास्त्र में इसे खनिज पदार्थ लिखा है। इसका वैज्ञानिक नाम एण्टीमनी सल्फाइड (ANTIMONY SULPHIDE) है।

6. रक्तजरोग के अन्तर्गत कैंसर व मधुमेह रोगों को भी समाहित कर सकते हैं।

अथर्ववेद (1/23)
{ऋषि - अथर्वा । देवता - असिक्नी वनस्पति । छन्द - अनुष्टुप् ।}

नक्तंजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च ।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् ।।1।।

हे रामा-कृष्णा तथा असिक्नी ओषधियों ! आप सब रात्रि में पैदा हुई है । रंग प्रदान करने वाली है ओषधियों आप गलित कुष्ठ तथा श्वेतकुष्ठग्रस्त व्यक्ति को रंग प्रदान करें ।।1।।

(धन्वन्तरि के अनुसार रामा से रामा तुलसी, आराम शीलता, घृतकुमारी, लक्षणा आदि, कृष्णा से कृष्णा तुलसी, कृष्णामूली, पुनर्नवा, पिप्पली आदि तथा असिक्नी से असिकनी असिशिम्वी आदि का बोध होता है ।)

किलासं व पलितं च निरितो नाशया पृषत् ।
आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय ।।2।।

हे ओषधियों ! आप कुष्ठ, श्वेतकुष्ठ तथा धब्बे आदि को विनष्ट करें, जिससे इस व्याधिग्रस्त मनुष्य के शरीर में पूर्व जैसी लालिमा प्रवेश करें । आप सफेद दाग को दूर करके इस रोगी को अपना रंग प्रदान करें ।।2।।

असितं ते प्रलयनमास्थानमसितं तव ।
असिक्न्यस्योषधे निरितो नाशय पृषत् ।।3।।

ने नील ओषधे ! आपके पैदा होने का स्थान कृष्ण वर्ण है तथा जिस पात्र में आप स्थित रहती हैं, वह भी काला है । हे ओषधे ! आप स्वयं श्याम वर्ण वाली हैं, इसलिए लेपन आदि के द्वारा इस रोगी के कुष्ठ आदि धब्बों को नष्ट कर दें ।।3।।

अस्थिजस्य किलासय तनूजस्य च यत् त्वचि ।
दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम् ।।4।।

शरीर में विद्यमान अस्थि और त्वचा के मध्य के मांस में तथा त्वचा पर जो श्वेत कुष्ठ का निशान है, उसे हमने ब्रह्म (ज्ञान या मन्त्र) प्रयोग के द्वारा विनष्ट कर दिया ।।4।।

अथर्ववेद (6/127)
{ऋषि-भृग्वंगिरा । देवता-वनस्पति, यक्ष्मनाशनं छन्द-अनुष्टुप, 3 त्र्यवसाना षट्पदा जगती}

विद्रधस्य बलासस्य लोहितस्य वनस्पते ।
विसल्पकस्योषधे मोच्छिषः पिशितं चन ।।1।।

हे ओषधे तुम कफ, क्षय, फोड़े- फुन्सी, श्वास-खाँसी में रक्त गिरना आदि रोगों को नष्ट करो । तुम त्वचा के विकारों एवं मांस में उत्पन्न विकरों को नष्ट करों ।।1।।

यौ ते बलास तिष्ठतः कक्षे मुष्कावपश्रितौ ।
वेदाहं तस्य भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम् ।।२।।

हे कास श्वासयुक्त बलास रोग ! काँख में उत्पन्न दो गिल्टियाँ तुम्हारे कारण हैं । मैं उसकी ओषधि को जानता हूँ । चीपुद्रु उसे समूल नष्ट करती है ।।२।।

यो अङ्ग्यो यः कर्ण्यो यो अक्ष्योर्विसल्पकः ।
वि वृहामो विसल्पकं विद्रधं हृदयामयम ।
परा तमज्ञातं यक्ष्ममधराञ्चं सुवामसि ।।3।।

नाड़ियों के मुख से अनेक प्रकार से फैलकर जो विसर्पक रोग हाथ, पैर, आँख, कान आदि तक पहुँच जाता है उसे तथा विद्रध नामक व्रण को, हृदय रोग को, गुप्त यक्ष्मा रोग को तथा निम्नगामी रोग को मैं ओषधियों द्वारा वापस लौटा (प्रभावहीन कर) देता हूँ ।।३।।

अथर्ववेद (19/44)
{ऋषि - भृगु ।देवता - उञ्जन, 8–9 वरूण । छन्द - अनुष्टुप्, 4 चतुष्पदा शङ्कुमती उष्णिक्, 5 त्रिपदा निचृत् विषमा गायत्री ।}

आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे ।
तदाञ्जन त्वं शताते शमापो अभयं कृतम् ।।1।।

हे आञ्जन ! आप मनुष्यों को सौ वर्ष की पूर्ण आयु प्रदान करने वाले हैं। चिकित्सकों के कथनानुसार आप विशेष स्फूर्तिवान् और कल्याणरूप हैं। आप हमें शान्ति और अभय प्रदान करें ।।1।।

यो हरिमा जायान्तोऽङ्गभेदो विसल्पकः ।
सर्व ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बहिर्निर्हन्त्वाञ्जनम! ।।2।।

हे पुरूष ! आपके शरीर में जो पाण्डू (पीलिया) नामक रोग, स्त्री सम्पर्क द्वारा होने वाला रोग, वातादि द्वारा उत्पन्न अंगभेद रोग अथवा विसर्पक (एग्जीमा-व्रण) आदि जो भी कष्टकारी रोग हो, उन सभी को यह आधजन (मणि) आपके शरीर से पृथक करे ।।2।।

आञ्जनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरूषजीवनम् ।
कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम् ।।3।।

पृथ्वी से उत्पन्न हुआ कल्याणप्रद और मनुष्यों को जीवनी शक्ति प्रदान करने वाला यह आञ्जन (मणि) हमें अमरत्व प्रदान करता है। यह हमें रथ के समान गतिशील और पापमुक्त बनाता है ।।3।।

प्राण प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड ।
निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ।।4।।

हे (दिव्य) प्राण ! आप हमारे प्राण को संरक्षण प्रदान करें। हे दुःख रहित प्राण ! आप हमारे प्राण को सुख प्रदान करें। आप दुर्गति (दुःखदायिनी प्रकृति) के बन्धनों से हमें मुक्त कराएँ ।।4।।

सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम् ।
वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ।।5।।

हे आञ्जन ! आप समुद्रीय जल के गर्भ तथा बिजलियों के पुष्प (वृष्टि जल के) रूप जाने जाते है। वायु आपके प्राण, सूर्यनेत्र और दिव्यलोक की पोषक धाराएँ आपके लिए रसरूप हैं ।।5।।

देवाञ्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः ।
न त्वा तरन्त्ययोषधयो बाह्या पर्वतीया उत ।।6।।

हे दिव्य आञ्जन ! आप त्रैककुदं (तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ) पर्वत पर उत्पन्न हैं। आप हमारी चारों ओर से रक्षा करें। पर्वतों से भिन्न स्थानों पर उत्पन्न होने वाली ओषधियाँ आपकी अपेक्षा कर लाभकारी होती हैं ।।6।।

वी३दं मध्यमवासृपद् रक्षोहामीवचातनः ।
अमीवाः सर्वाश्चातयन् नाशयदभिभा इतः ।।7।।

असुर संहारक और रोग विनाशक यह आञ्जन पर्वत शिखर से नीचे आकर प्रत्येक वस्तु में फैल जाता है। यह समस्त विकारों को विनष्ट कर देता है। यह आक्रामक रोगों का भी निवारण कर देता है ।।7।।

बह्वी३दं राजन् वरूणानृतमाह पूरूषः ।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ।।8।।

हे पापनिवारक राजा वरूण ! यह पुरूष प्रातः काल से लेकर शयन तक अतिशय मिथ्या भाषण कर चुका है। इसे दोष मुक्त करें। हजारों बलों से सम्पन्न हे आञ्जन ओषधे ! आप मिथ्या भाषण के पाप से हमें मुक्त करें ।।8।।

यदापो अघ्न्या इति वरूणेति यदूचिम ।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ।।9।।

जल के अधिष्ठाता न मारने योग्य हे वरूण देव ! जो हम कहते हैं, उसे आप साक्षी रूप में जानें। हे असीम शक्तियुक्त आञ्जन सभी पापकर्मों के कुप्रभाव से आप हमें मुक्त रखें ।।9।।

मित्रश्चव त्वा वरूणश्चानुप्रेयतुराञ्जन ।
तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः ।।10।।

हे आञ्जन ! मित्र और वरूण दिव्यलोक से भूमि पर पहुँचे पुनः लौटकर आपके पीछे-पीछे गये। आप सुखोपभोग के लिए उनको यहाँ लेकर आएँ ।।10।।

रक्तज रोग नाशक हवन धूप

1. गूग्गल, गन्धक और सुहागा के मिश्रण से हवन कर उसकी धूम को दाद पर ग्रहण करें।

2. नीम के पत्ते और फूल, चमेली के पत्ते, चोपचीनी, शीतलचीनी, पद्‌माख, मेथी, दारूहल्दी एवं कपूर को एकत्र कर कूट छान कर हवन करें।

3. गूग्गल 50 ग्राम, गन्धक 10 ग्राम, बायविडङ्ग 10 ग्राम, नीमपत्ती 10 ग्राम, निम्बोली 10 ग्राम, चमेली पत्ते 10 ग्राम, दारूहल्दी 10 ग्राम, मंजिष्ठ 10 ग्राम, कपूर 10 ग्राम, केशर 01 ग्राम। सबको एकत्र कूट कर रख लें। प्रातः सायं आग पर धूनी देकर प्रभावित अंग पर ग्रहण करें।

4. स्त्रीरोगनिवारक हवन सामग्री के अंतर्गत गर्भाशय कैंसर नाशक धूप का प्रयोग कर सकते हैं।

4. अस्थिजन्य रोग निवारक सूक्त

पूर्वकथन :-

1. इस सूक्त मे टूटे अंगों को जोड़ने एवं जले-कटे घावों को भरने के लिये 'रोहिणी' नामक ओषधि का उल्लेख है। वैद्यक ग्रन्थों में इसके वीरवती (वीरों वाली), चर्मकषा, मांसरोही (चर्म तथा मांस को स्थापित करने वाली), प्रहारवल्ली (प्रहार के उपचार में प्रयुक्त) आदि नाम दिये गये हैं। मन्त्रों में इसकी ऐसी उपचार परक विशेषताओं का वर्णन है। पूर्वकाल के युद्धों के समय वैद्यगण रातभर योद्धाओं के घावों का उपचार करके उन्हें प्रातः फिर से युद्ध के योग्य बना देते थे। उसमें दिव्य ओषधि प्रयोगों के साथ मन्त्र शक्ति एवं प्राण शक्ति का प्रयोग भी किया जाता रहा होगा। मन्त्रों में दिए गए वर्णन से स्पष्ट होता है कि कटे हुए अंगों को हड्डी, मांस से मांस, चमड़ी से चमड़ी जोड़ने की क्षमता उन्हें प्राप्त थी। रूधिर, मांस, हड्डियों को आवश्यकतानुसार बढ़ाने की कला भी उन्हें ज्ञात थी।
2. इस सूक्त में रोहणी, अरून्धती और भद्रा ओषधियों के नाम आये हैं, जो पर्यायवाची माने गये है। इन तीनों ओषधियों को मुख्य रूप से लाक्षा (लाख) ओषधि विशेष कहा गया है। लाक्षा को शतघ्नी भी बताया गया है। इसका वैज्ञानिक नाम "DOCUS LACCA" दिया गया है।
3. परवर्ती वैद्यक ग्रन्थों में हड़जोड़ (अस्थि श्रृंखला, वज्र वल्ली) को टूटी हड्डी जोड़ने वाला बताया गया है।
4. हवन धूप के रूप में लाक्षा और हड़जोड़ का प्रयोग अंगारे पर किया जा सकता है।

अथर्ववेद (02/03)
{ऋषि - अंगिरा। देवता - भैषज्य, आयु, धनवन्तरि। छन्द - अनुष्टुप, 6 त्रिपात् स्वराट् उपरिष्टात् महाबृहती}

अदो यदवधावत्यवत्कमधि पर्वतात्।
तत्ते कृणोमि भेषजं सुभेषजं यथाससि ।।1।।

जो रक्षक-प्रवाह (सोम) मुञ्जवान पर्वत के ऊपर से नीचे लाया जाता है, उसके अग्रभाग वनस्पति को हम इस प्रकार बनाते हैं जिससे वह आपके लिए श्रेष्ठ ओषधि बन जाए ।।1।।

आदङ्गा कुविदङ्गाशतं भेषजानि ते ।
तेषामसि त्वमुत्त ममनास्रावमरोगणम् ।।2।।

हे दिव्य प्रवाह ! जो आपसे उत्पन्न होने वाली असीम औषधियाँ हैं, वे अतिसार, बहुमूत्र और नाड़ीव्रण आदि रोगों को विनष्ट करने में पूर्णरूपेण सक्षम हैं ।।2।।

नीचैः खनन्त्यसुरा अरूस्राणमिदं महत् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ।।3।।

प्राणों को विनाश करने वाले तथा देह को गिराने वाले असुर रूप रोग, व्रण के मुख को अन्दर से फाड़ते है, लेकिन वह मुंज (सोम) नामक ओषधि धाव की अत्युत्तम ओषधि है । वह अनेकों व्याधियों को नष्ट कर देती है ।।3।।

उपजीका उद्भरन्ति समुद्रादधि भेषजं ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमशीशमत् ।।4।।

धरती के नीचे विद्यमान जलराशि से व्याधि नष्ट करने वाली ओषधि रूप बमई (दीमक की बांबी) की मिट्टी ऊपर आती है । यह मिट्टी आस्राव की ओषधि है । यह अतिसार आदि व्याधियों को शान्त करती है ।।4।।

अरूस्राणमिदं महत् पृथिव्या अध्युद्भृतम्
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ।।5।।

खेत से उठाई हुई ओषधि रूप मिट्टी फोड़े को पकाने वाली तथा अतिसार आदि रोगों को समूल नष्ट करने वाली (रामबाण) ओषधि है ।।5।।

शन्नो भवन्त्वप ओषधयः शिवाः ।
इन्द्रस्य वज्रो अपहन्तु रक्षस आराद् विसृष्टा इषवः पतन्तु रक्षसाम् ।।6।।

ओषधि के लिए प्रयोग किया हुआ जल हर्ष प्रदायक होकर हमारी व्याधियों को शमित करने वाला हो । रोग को उत्पन्न करने वाले (असुरों) को इन्द्र देव का वज्र विनष्ट करें । असुरों द्वारा मनुष्यों पर संधान किए गये व्याधि रूप बाण हम सबसे दूर जाकर गिरे ।।6।।

अथर्ववेद (4/12)
{ऋषि - ऋभु । देवता - वनस्पति । छन्द - अनुष्टुप 1, त्रिपदा गायत्री 6 त्रिपदा यवमध्या भुरिक गायत्री, 7 बृहती}

राहण्यसि रोहण्यस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी ।
रोहयेदमरून्धति ।।1।।

हे लाल वर्ण वाली रोहिणि ! आप टूटी अस्थियों को पूर्णता प्रदान करने वाली हैं । हे अरून्धति ! (उपचार के मार्ग में बाधा न आने देने वाली) आप इस (घाव आदि) को भर दें ।।1।।

यत् ते रिष्टं यत् ते द्युत्तमस्ति पेष्ट्रं त आत्मनि ।
धाता तद् भद्रया पुनः सं दधत् परूषा परूः ।।2।।

हे घायल व्यक्ति ! आपके जो अंग चोट खाये हुए या जले हुए हैं, प्रहार से जो अंग टूट गये हैं या पिस गये हैं, उन समस्त अंगों को देवगण इस भद्रा (हितकारी ओषधि या शक्ति) के माध्यम से जोड़ दें, ठीक कर दें ।।2।।

सं ते मज्जा मज्ज्ञा भवतु समु ते परूषा परूः ।
सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्यपि रोहतु ।।3।।

हे घायल व्यक्ति ! आपके शरीर में स्थित छिन्न मज्जा पुनः बढ़कर सुखकारी हो जाए, पोरू से पोरू जुड़ जाएं मांस का छिन्न-भिन्न हुआ भाग तथा हड्डी भी जुड़कर ठीक हो जाए ।।3।।

मज्जा मज्ज्ञा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु ।
असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ।।4।।

छिन्न-भिन्न मज्जा-मज्जा से, मांस-मांस से तथा चर्म-चर्म से मिल जाए । रूधिर एवं हड्डियां भी बढ़ जाएँ ।।4।।

लोम लोम्ना सं कल्पया त्वचा सं कल्पया त्वचम् ।
असृक् ते अस्थि रोहतु च्छिन्नं सं धेह्योषधे ।।5।।

हे ओषधे ! (शस्त्र प्रहार से अलग हुए), आप रोम को रोम से, त्वचा को त्वचा से मिलाकर ठीक कर दें तथा आपके द्वारा हड्डियों को रक्त दौड़ने लगे । टूटे हुए अन्य अंगों को भी आप जोड़ दहें ।।5।।

स उत् तिष्ठ प्रेहि प्र द्रव रथः सुचक्रः सुपविः सुनाभिः ।
प्रति तिष्ठोर्ध्वः ।।6।।

हे छिन्न-भिन्न अंग वाले मनुष्य ! आप (मन्त्र और ओषधि के बल से) स्वस्थ होकर अपने शयन स्थान से उठ करके वेगपूर्वक गमन करें । जिस प्रकार से श्रेष्ठ चक्रों वाले, सुदृढ़ नेमि वाले तथा सुदृढ़ नाभि वाले रथ दौड़ते हुए प्रतिष्ठित होते हैं, उसी प्रकार आप भी सुदृढ़ अंग वाले होकर दौड़ते हुए प्रतिष्ठित हों ।।6।।

यदि कर्तं पतित्वा संशश्रेयदि वाश्मा प्रहृतो जघान ।
ऋभू रथस्येवाङ्गनिसं दधत् परुषा परूः ।।7।।

घाव, धारवाले शस्त्र के प्रहार से हुआ हो या पत्थर की चोट से हुआ हो, जिस प्रकार ऋभुदेव (या कुशल शिल्पी) रथों के अंग-अवयव जोड़ देते हैं, वैसे ही पोरू से पोरू जुड़ जाएँ ।।7।।

5. मानस रोग चिकित्सा
(MENTAL DISEASE)

पूर्वकथन :-

प्रज्ञा (बुद्धि) से किये गये अपराध के परिणाम स्वरूप ईर्ष्या-द्वेष - शोक - मोह - भय - क्रोध - अहंकार - दुःस्वप्न - उन्माद आदि मनोविकार (मानस रोग) उत्पन्न होते हैं ।

1. ईर्ष्या-द्वेष चिकित्सा :- 'पराभ्युदयासहनम् ईर्ष्या' = दूसरे के अभ्युदय (उन्नति) को न सहना ईर्ष्या कहलाता है । इसमें रजो गुण प्रधान होता है । ईर्ष्याद्वेष रोग, पित्त प्रकोप से बढ़ता है । ईर्ष्या, मनन शक्ति को मार देता है ।

अथर्ववेद काण्ड 7 सूक्त 46 के दो मन्त्रों के आधार पर विद्वानों ने कहा है कि सिन्धुफल (समुद्रफल) को जल में घिस कर सेवन करने से मस्तिष्क ऊतकों में प्रसन्नता और बल उत्पन्न होता है तथा ईर्ष्या आदि के दुर्विचार दूर होते हैं ।

2. शोक-मोह चिकित्सा :- अथर्ववेद काण्ड 7 सूक्त 96 के तीन मन्त्रों में सोम औषधि द्वारा शोक आदि मानसिक दोषों की चिकित्सा कही गई है ।

3. क्रोध चिकित्सा:- क्रोध से भी पित्त का प्रकोप होता है, जिससे शरीर में दाह की उत्पत्ति होती है । अथर्ववेद काण्ड 6 सूक्त 42, 43 में 'दर्भ' (कुश, इम्परेटा सिलिण्ड्रिका) ओषधि से क्रोध या मन्यु शमन का वर्णन है ।

4. दुःस्वप्न या निद्रानार्श की चिकित्सा :- अथर्ववेद 6/45 में वरणमति और आन्जनमणि का सेवन बताया गया है ।

5. उन्माद चिकित्सा :- मन की उद्भ्रान्त अवस्था का नाम उन्माद है । इस रोग में वृद्धि प्राप्त हुए वात-पित्त-कफ दोष अपने मार्गों को छोड़कर चित्त को विक्षिप्त कर देते हैं ।

उन्माद रोग दो प्रकार के होते हैं :-

1. शान्त ।
2. प्रलाप वाला ।

शान्त उन्माद - मस्तिष्क के आन्तरिक तन्तु जब विशेष कफलिप्त या जड़ हो जाये ।

प्रलाप वाला उन्माद - जब मस्तिष्क में वात पित्त प्रकोप से तन्तु क्षुब्ध हो जाये । इसे ही प्रलापोन्माद, भ्रमोद्वेग तथा भूतोन्माद कहते हैं । अथर्ववेद 4/37 एवं 6/111 में मन्त्र एवं ओषधियों द्वारा उन्माद की चिकित्सा का उल्लेख है ।

6. अथर्ववेद 2/8 में वंशानुगत (क्षेत्रिय) मानस रोग निवारण की कामना है तथा 4/17 अपामार्ग ओषधि से रोग निवारण की कामना है ।

5/1. ईर्ष्या निवारक सूक्त

अथर्ववेद 07/46 एवं 47

{ऋषि-प्रस्कण्व । देवता-भेषज, ईर्ष्यापनयन । छन्द-अनुष्टुप}

जनाद विश्वजनीनात् सिन्धुस्पर्याभृतम् ।
दूरात् त्वा मन्य उद्भतमीर्ष्याया नाम भेषजम् ।।1।।

सम्पूर्ण मानवों के लिए हितकारी जनपद से तथा समुद्र से अथवा दूर से लाई गई ओषधि ईर्ष्या एवं क्रोध हटाने में समर्थ है ।

अग्नेरिवास्य दहतो दावस्य दहतः पृथक् ।
एतामेतस्येर्ष्यामुद्नाग्निमिव शमय ।।2।।

हे ईर्ष्या निवारण करने वाले देव ! आप अग्निदेव के समान हमारे सब कार्यों को भस्म करें एवं ईर्ष्यालु पुरूष की ईर्ष्या को उसी प्रकार शान्त करें जिस प्रकार जल के द्वारा अग्नि को शान्त करते हैं ।

5/2. शोक-मोह निवारक सूक्त

अथर्ववेद (07/96)

{ऋषि-भृग्वङ्गिरा । देवता - 1–2 वनस्पति, 3 सोम । छन्द-अनुष्टुप, 3 त्रिपदा विराट् गायत्री}

या ओषधयः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।1।।

जो सैकड़ों प्रकार की ओषधियाँ हैं, उनमें सोम का निवास है । जो बृहस्पतिदेव के द्वारा अनेक रोगों में प्रयोग की गई हैं वे ओषधियाँ हमें रोगमूलक पाप से छुड़ाएँ ।।1।।

मुञ्चन्तु मा शपथ्या३दथो वरूण्या दुत ।
अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् ।।2।।

जल अथवा ओषधियाँ हमें शापजनित रोग या पाप से बचाएँ । मिथ्या भाषण से लगने वाले वरूणदेव के अधिकार वाले पापों से बचाएँ । यमराज के पाप 'बन्धन-पाश' से बचाएँ और समस्त देव सम्बन्धी पापों से हमें मुक्त रखें । ।।2।।

यच्चक्षुषा मनसा यच्च वाचोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः ।
सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु ।।3।।

हमने जागते हुए या सोते हुए जो पाप कर्म इन्द्रियों द्वारा, वाणी द्वारा या मन द्वारा किए हों, हमारे उन समस्त पापों से सोम देवता अपनी पवित्र शक्ति द्वारा, हमें मुक्त करें ।।3।।

5/3. क्रोध निवारक सूक्त

अथर्ववेद (06/42)

{ऋषि-भृग्वङ्गिरा । देवता- मन्यु । छन्द- भूरिक् अनुष्टुप, 3 अनुष्टुप ।}

अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः ।
यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै ।।1।।

धनुर्धारी पुरूष जिस प्रकार धनुष पर चढ़ी प्रत्यञ्चा को उतारता है, उसी तरह हम आपके हृदय से क्रोध को उतारते हैं, ताकि हम परस्पर मित्रवत् रह सकें ।।1।।

सखायाविव सचावहै अव मन्युं तनोति ते ।
अधस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामसि यो गुरूः ।।2।।

हम एक दूसरे से मन मिलाते हुए, एक मन होकर कार्य करें । इसीलिए हम आपके क्रोध को भारी पत्थर के नीचे फेंकते हैं ।।2।।

अभि तिष्ठामि ते मन्युं पाष्ण्या प्रपदेन च ।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ।।3।।

हे क्रुद्ध देव ! हम आपके क्रोध को पैर के अग्रभाग एवं एड़ी से दबाते है । जिससे आप शान्त होकर हमारे चित्त के अनुकूल बनें और अनियन्त्रित रहनें की बात न करें ।।3।।

अथर्ववेद (06/43)
{ऋषि - भृग्वङ्गिरा । देवता - मन्युशमन । छन्द - अनुष्टूप ।}

अयं दर्भो विमन्युकः स्वाय चारणाय च ।
मन्योर्विमन्युकस्यायं मन्सुशमन उच्यते ।।1।।

यह जो सामने दर्भ (कुश) खड़ा है, यह स्वयं के एवं अन्य दूसरे के क्रोध को नष्ट करने की शक्ति वाला है । यह स्वभावतः क्रोधी पुरूष एवं कारणवश क्रोध करने वाले के क्रोध को शान्त करने में समर्थ है ।।1।।

अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति ।
दर्भः पृथिव्या उत्थितो मन्युशमन उच्यते ।।2।।

बहुत जड़ों वाला, समुद्र (जल की अधिकता) के समीप उत्पन्न होने वाला, पृथ्वी से उगा हुआ यह दर्भ क्रोधको शान्त करने वाला बतलाया गया है ।।2।।

वि ते हनव्यां शरणिं वि ते मुख्यां नयामसि ।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ।।3।।

हे क्रुद्ध देव ! आपके हनु पर क्रोध से उत्पन्न नस की फड़कन को हम शान्त करते हैं एवं मुख मण्डल पर क्रोध के कारण उत्पन्न चिन्हों को हम शान्त करते हैं । आप क्रोधवश विवश होकर कुछ (अनर्गल) न कहें तथा हमारे चित्त के अनुकूल रहें ।।3।।

5/4. दुः ष्वप्ननाशन सूक्त

अथर्ववेद (06/45)
{ऋषि - अङ्गिरस (अङ्गिरस), प्रचेता, यम । देवता - दुःष्वप्ननाशन ।
छन्द - पथ्यापंक्ति, 2 भुरिक्, त्रिष्टुप, 3 अनुष्टुप्}

परोऽपेहिमनस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः ।।1।।

हे पापासक्त मन! तू अशोभन विचार वाला है इसलिए हम तुझे नही चाहते । तू हमसे दूर हट जा और वृक्ष वाले वनों में विचरण कर । मेरा मन घर-परिवार एवं गौओं में उचित भाव से लगा रहे ।।1।।

अवशसा निःशसा यत् पराशसोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे असमद् दधातु ।।2।।

निर्दयतापूर्वक निकट या दूर से की गई हिंसा के पाप एवं जागते अथवा सोते में किये गये जो पाप हैं, उन सब दुःस्वप्नों एवं दुष्कर्मों को अग्नि देव हमसे दूर करें ।।2।।

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि ।
प्रचेता न आङ्गिरसो दुरितात् पात्वंहसः ।।3।।

हे ब्रह्मणस्पते इन्द्रदेव ! पापों के कारण हम जिन दुःस्वपनों से पीड़ित हैं, उन पापों से, आंगिरस मन्त्रों से सम्बन्धित ज्ञानी वरूणदेव हमें बचाएँ ।।3।।

5/5. उन्माद नाशक सूक्त

अथर्ववेद (6/111)
{ऋषि-अथर्वा । देवता-अग्नि । छन्द-अनुष्टुप, 1 परानुष्टुप्, त्रिष्टुप ।}

इमं मे अग्ने पुरूषं मुमुग्ध्ययं यो बद्धः सुयतो लालपीति ।
अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं यदानुन्मदितोऽसति ।।1।।

हे अग्निदेव ! यह पुरूष पापों से उत्पन्न रोगरूप बन्धनों से बँधा हुआ उन्माद रोग के कारण प्रलाप कर रहा है, कृपा कर आप इसे रोग और कारणरूप पापों से मुक्त करें । यह आपका भाग (हवि) और अधिक देने वाला हो ।।1।।

अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम् ।
कृणोमि विद्वान् भेषजं सथानुन्मदितोऽससि ।।2।।

हे गन्धर्वग्रह से जकड़े हुए मनुष्य ! तुम्हें अग्निदेव उन्माद मुक्त करें । तुम्हारे उद्भ्रान्त मन को शान्त एवं स्थिर करने के लिए हम उन ओषधियों का प्रयोग करते हैं, जिनका हमें ज्ञान है ।।2।।

देवैनसादुन्मदितमुन्मत्तं रक्षसस्परि ।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यथानुन्मदितोऽसति ।।3।।

किये गये दैवी अथवा राक्षसी पापों के फलस्वरूप उत्पन्न उन्माद को शान्त करने की ओषधि को हम जानते हैं । हम उन्हीं ओषधियों का प्रयोग करते हैं, जिससे तुम्हारा चित्त भ्रमरहित अर्थात् स्थिर हो जाए ।।3।।

पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः ।
पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितोऽससि ।।4।।

हे पुरूष ! अप्सराओं ने तुम्हें रोगमुक्त कर दिया है । भग एवं इन्द्रदेव सहित समस्त देवों ने तुम्हें रोगमुक्त कर लौटा दिया है ।।4।।

5/6. वंशानुगत मानस रोग निवारक सूक्त

अथर्ववेद (02/08)
{ऋषि -भृग्वङ्गिरा । देवता - वनस्पति, यक्ष्मनाशन । छन्द - अनुष्टुप, 3 पथ्यापङ्क्ति, 4 विराट् अनुष्टुप, 5 निचृत पथ्यापंक्ति ।}

इस सूक्त में क्षेत्रिस (वंशानुगत) रोग-निवारण के सूत्र कहे गये हैं । प्रथम मन्त्र में उसके लिए उपयुक्त नक्षत्र योग का तथा तीसरे में वनौषधियों का उल्लेख है । मन्त्र 2,4 एवं 5 सहयोगी तन्त्र, उपचार, पथ्यादि के संकेत प्रतीत होते हैं । तथ्यों तक पहुँचने के लिए शोध कार्य अपेक्षित है -

उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके ।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ।।1।।

विचृत नामक प्रभावपूर्ण दोनों तारिकाएँ (अथवा उपयुक्त ओषधि एवं तारिकाएँ) उगी है । वे वंशानुगत रोग के अधम एवं उत्तम पाश को खोल दें ।।1।।
{कुछ आचार्यों ने भगवती को तारकों का विशेषण माना है, कुछ उसका अर्थ दिव्य औषधि के रूप में करते हैं ।}

अपेयं रात्र्युच्छत्वपोच्छन्त्वभिकृत्वरीः ।
वीरूत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ।।2।।

यह रात्रि चली जाए, हिंसक (रोगाणु) भी चले जाएँ । वंशानुगत रोग की ओषधि उस रोग से मुक्ति प्रदान करें ।।2।।
{इस मन्त्र से रोग मुक्ति का प्रयोग रात्रि के समापन काल अर्थात् ब्राह्म मुहुर्त में करने का आभास मिलता है ।}

बभ्रोरर्जुनकाण्स्य यवस्य ते पलाल्या तिलस्य तिलपिञ्ज्या ।
वीरूत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ।।3।।

भूरे और सफेद रंग वाले अर्जुन की लकड़ी, जौ की बाली तथा तिल सहित तिल की मंजरी व्याधि को विनष्ट करें । आनुवंशिक रोग को विनष्ट करने वाली यह वनस्पति इस रोग से विमुक्त करें ।।3।।
{अर्जुन की छाल, जौ, तिल आदि का प्रयोग ओषधि अनुपान या पथ्यादि के रूप में करने का संकेत प्रतीत होता है ।}

नमस्ते लाङ्गलेभ्यो नम ईषायुगेभ्यः ।
वीरूत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ।।4।।

रोग के शमन के लिए (ओषधि उत्पादन में उपयोगी) वृषभ युक्त हल तथा उसके काष्ठ युक्त अवयवों को नमन है । आनुवंशिक रोग को विनष्ट करने वाली ओषधि आपके क्षेत्रिय रोग को विनष्ट करें ।।4।।

नमः सनिस्रसाक्षेभ्यो नमः संदेश्येभ्यो नमः क्षेत्रस्य पतये ।
वीरूत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ।।5।।

(ओषधि उत्पादन में सहयोगी) जल प्रवाहक अक्ष को नमन, संदेश

पहुँचाने को नमन, (उत्पादक) क्षेत्र के स्वामी को नमन ! क्षेत्रिय रोग निवारक ओषधि इस रोग का निवारण करें ।।5।।

अथर्ववेद 4 / 17
{ऋषि - शुक्र । देवता - अपामार्ग वनस्पति । छन्द - अनुष्टुप,।}

ईशानां त्वा भेषजानामुज्जेष आ रभामहे ।
चक्रे सहस्रवीर्यं सर्वस्मा ओषधे त्वा ।।1।।

हे ओषधे ! रोग निवारण के लिए ओषधिरूप में प्रयुक्त होने वाली अन्य ओषधियों की आप स्वामिनी हैं । हम आपका आश्रय ग्रहण करते हैं । हे ओषधे ! समस्त रोगों के निवारण के लिए हम आपको सहस्र वीर्यों से सम्पन्न करते हैं ।।1।।

सत्यजितं शपथयावनी सहमानां पुनःसराम् ।
सर्वाः समह्वयोषधीरितो नः पारयादिति ।।2।।

दोषों को दूर करने वाली 'सत्यजित', क्रोध को नष्ट करने वाली 'शपथ यावनी', अभिचारों को सहने वाली 'सहमाना' तथा बार-बार रोगों को नष्ट करने वाली (अथवा विरेचक) 'पुनःसरा' आदि ओषधियों को हम प्राप्त करते हैं । वे इन रोगों से हमें तार दें ।।2।।

या शपाप शपनेन याघं मूरमादधे ।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ।।3।।

जो पिशाचिनियां क्रोधित होकर शाप देती हैं और मूर्छित करने वाला पाप कर्म करती हैं तथा जो शरीर के रक्त को हरने के लिए नवजात शिशु को भी पकड़ लेती हैं, वे सब पिशाचिनियाँ अभिचार करने वाले शत्रु के ही पुत्र को खाएं ।।3।।

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि ।।4।।

हे कृत्ये ! अभिचारकों ने जिस आभिचारिक प्रयोग को आपके लिए कच्चे मिट्टी के बर्तन में किया है, धुएं से नीली और ज्वाला से लाल अग्नि

स्थान में किया है तथा कच्चे मांस में किया है, उससे आप उन अभिचारकों को ही नाश करें ।।4।।

दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः ।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ।।5।।

अरिष्ट दर्शनरूपी बुरे स्वप्न को, दुःखदायी जीवन बिताने की स्थिति को, राक्षस जाति को, अभिचार क्रिया से उत्पन्न भारी भय को, निर्धनता बढ़ाने वाली अलक्ष्मियों को तथा बुरे नाम वाली समस्त पिशाचियों को हम इस पुरूष से दूर करते हैं ।।5।।

क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ।।6।।

हे अपामार्ग ओषधे ! अत्यधिक भूख से मरना, अत्याधिक प्यास से मरना अथवा भूख-प्यास से मरना, वाणी अथवा इन्द्रियों के दोष तथा सन्तानहीनता आदि दोषों को हम आपके द्वारा दूर करते हैं ।।6।।

तृष्णामारं क्षुधामारमथो अक्षपराजयम् ।
अपमार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ।।7।।

प्यास से मरना, भूख से मरना तथा इन्द्रिय का नष्ट होना आदि समस्त दोषों को हे अपामार्ग ओषधे ! आपकी सहायता से हम दूर करते हैं ।।7।।

अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद् वशी ।
तेन ते मृज्य आस्थितमथ त्वमगदमश्चर ।।8।।

हे अपामार्ग ओषधे ! आप समस्त ओषधियों को वशीभूत करने वाली अकेली ओषधि है । हे रोगिन ! आपके रोगों को हम अपामार्ग ओषधि से दूर करते हैं ।।8।।

उन्माद आदि पर हवन सामग्री

1. सीताफल के बीज और जटामांसी समान भाग लेकर कूट लें और घृत मिलाकर प्रातः सायं हवन करें। इससे सब प्रकार के मानकिस रोग दूर होते हैं।

अथवा

2. गुग्गल, अगर, देवदारू, कूठ, वंशलोचन और प्रियंगुपुष्प समान भाग लेकर कूटें और घृतयुक्त करके हवन करें। सभी प्रकार के उन्माद, अपस्मार और चातुर्थिक ज्वर नष्ट होते हैं।

अथवा

3. कचूर, खस, नागरमोथा, महुआ, सफेद चन्दन, गुग्गल, अगर, बड़ी इलायची, दर्भ (कुश), अपामार्ग (चिड़चिड़ा) बीज और शहद समान भाग लेकर हवन धूप तैयार करें। इससे चित्तभ्रम, मोह, चक्कर, पागलपन आदि में लाभ होता है।

अथवा

4. मन्त्रों में वर्णित औषधि से धूनी देवें।

6. क्षयरोग निवारक सूक्त

पूर्वकथन :-

1. जिस रोग को प्राचीन साहित्य में क्षय, शोष अथवा राजयक्ष्मा (राजरोग) नाम से पुकारा गया है, उसको हकीम लोग तपेदिक या सिल और डाक्टर लोग टी० बी० (ट्यूबर क्युलोसिस Tuberculosis) या थाईसिस (Phthesis) कहते हैं।

- यज्ञ चिकित्सा
डॉ. फुन्दनलाल अग्निहोत्री पृष्ठ - 19

2. क्षय का अर्थ है क्षीण (कमजोर) करने वाला रोग।

-अथर्व चिकित्सा शास्त्र,
श्री पं. प्रियरत्न जी आर्ष पृष्ठ-85

3. वेद में रोग के पर्याय में ''यक्ष्मा'' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। यह शब्द ''राजयक्ष्मा'' के लिये नहीं प्रयुक्त हुआ है। अथर्ववेद 3/11/01 में राजयक्ष्मा के साथ अज्ञातयक्ष्मा शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका शाब्दिक अर्थ है अज्ञात रोग।। (टी. बी. नहीं)

- अथर्वचिकित्सा विज्ञान
डॉ. हीरालाल विश्वकर्मा पृष्ठ - 593

4. पूर्ववर्णित सर्वरोग निवारक मन्त्रों में कई बार 'यक्ष्माणां सर्वेषां' ऐसा पाठ आया है जो सामान्य रोगों का वाचक है।

5. प्रयक्तया यया चेष्टया राजयक्ष्मा पुरा जितः।
तां वेदविहितामिष्टिमारोग्यार्थी प्रयोजयेत्।।

- जिस हवन-यज्ञ के द्वारा प्राचीन काल से राजयक्ष्मा रोग नष्ट किया जाता रहा है, आरोग्य की कामना वाले व्यक्ति को उसी वेद विहित यज्ञ का आयोजन करना उचित है।

- चरक संहिता

6. अथर्ववेद काण्ड 01 सूक्त 12 तथा काण्ड 03 सूक्त 11 को यक्ष्म नाशक कहा गया है। यज्ञ - चिकित्सक विद्वानों ने इन मन्त्रों के भावार्थों के आधार पर यक्ष्मा का रूढ़ अर्थ क्षयरोग स्वीकार किया है। भैषज्य-हवन में मन्त्रों के प्रयोग से क्षय रोगी में जीवन के प्रति आशा का संचार होता है और रोग के आतंक का भय समाप्त होता है।

7. यज्ञ के द्वारा क्षयरोग चिकित्सक डॉ० फुन्दनलाल अग्निहोत्री ने अथर्ववेद काण्ड 02 सूक्त 31 के मन्त्रों से भी यज्ञ करने का उल्लेख किया है । इन सूक्तों के देवता इन्द्र तथा आदित्य हैं, जिनसे शरीर-बाधक कीटाणुओं का नाश होना उल्लिखित है । यहाँ यह आश्चर्यजनक है कि हवन की आहुतियाँ शरीर-साधक कीटाणुओं को तो पोषण पहुँचाकर शरीर को पुष्ट होने में सहायता देती है, किन्तु शरीर के लिये बाधक एवं आक्रान्ता कीटाणुओं को पूरी तरह नष्ट करने का प्रभाव करती है ।

अथर्ववेद (1/12)
{ऋषि - भृग्विङ्गरा । देवता - यक्ष्मनाशन । छन्द - जगती, 2, 3 त्रिष्टुप, 4 अनुष्टुप ।}

जरायुजः प्रथम उस्रियो वृषा वातभ्रजा स्तनयन्नेति वृष्ट्या ।
स नो मृडाति तन्व ऋजुगो रूजन् य एकमोजस्रेधा विचक्रमे ।।1।।

जरायु से उत्पन्न शिशु की भाँति बलशाली सूर्यदेव वायु के प्रभाव से मेघों के बीच से प्रकट होकर हमारे शरीरों को हर्षित करते हैं । वे सीधे मार्ग से बढ़ते हुए अपने एक ही ओज को तीन प्रकार से प्रसारित करते हैं ।।1।।

अंङ्गे अंङ्गे शोचिषा शिश्रियाणं नमस्यन्तस्त्वा हविषा विधेम ।
अङ्कात्समङ्कान् हविषा विधेम यो अग्रभीत् पर्वास्या ग्रभीता ।।2।।

अपनी ऊर्जा से अंग-प्रत्यंग में संव्याप्त हे सूर्यदेव ! स्तुतियों एवं हवि द्वारा हम आपको और आपके समीपवर्ती देवों का अर्चन करते हैं । जिसके शरीरस्थ जोड़ों को रोगों ने ग्रसित कर रखा है, उसके निमित्त भी हम आपको पूजते हैं ।।2।।

मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनं परूष्परूराविवेशा यो अस्य ।
यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्त्सचतां पर्वतांश्च ।।3।।

हे आरोग्यदाता ! सूर्यदेव ! आप हमें सिरदर्द एवं कास (खांसी) की पीड़ा से मुक्त करें । सन्धियों में घुसे रोगाणुओं को नष्ट करें । वर्षा, शीत एवं ग्रीष्म

ऋतुओं के प्रभाव से उत्पन्न होने वाले वात, पित्त, कफ जनित रोगों को दूर करें । इसके लिए हम अनुकूल वातावरण के रूप में पर्वतों एवं वनौषधियों का सहारा लेते हैं ।।3।।

शं मे परस्मै गात्राय शमस्त्ववराय मे ।
शं मे चतुर्भ्यो अंङ्गेभ्यः शमस्तु तन्वे३ मम ।।4।।

हमारे सिर आदि श्रेष्ठ अंगो का कल्याण हो । हमारे उदर आदि साधारण अंगों का कल्याण हो । हमारे चारों अंगों (दो हाथों एवं दो पैरों) का कल्याण हो । हमारे समस्त शरीर को आरोग्य लाभ प्राप्त हो ।।4।।

अथर्ववेद {03/11}
{ऋषि - ब्रह्म, भृग्विङ्गरा । देवता - इन्द्राग्नी, आयु, यक्ष्मनाशन । छन्द - त्रिष्टुप, 4 शक्वरीगर्भा जगती, 5–6 अनुष्टुप 7 उष्णिक, बृहतीगर्भा पथ्यापंक्ति 8 इत्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा जगती ।}

इस सूक्त में यज्ञीय प्रयोगों द्वारा रोग-निवारण तथा जीवनीशक्ति के संवर्द्धन का स्पष्ट उल्लेख किया गया है -

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनायकमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ।।1।।

हे रोगिन् ! तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट यक्ष्मा (रोग), राजयक्ष्मा (राजरोग) से मैं हवियों के द्वारा तुम्हें मुक्त करता हूँ । हे इन्द्र देव और अग्नि देव ! पीड़ा से जकड़ लेने वाली इस व्याधि से रोगी को मुक्त कराएँ ।।1।।

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरूपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ।।2।।

यह रोगग्रस्त पुरूष यदि मृत्यु को प्राप्त होने वाला हो या उसकी आयु क्षीण हो गई हो तो भी मैं विनाश के समीप से वापस लाता हूँ । इसे सौ वर्ष तक की पूर्ण आयु के लिए सुरक्षित करता हूँ ।।2।।

सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैन शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ।।3।।

सहस्र नेत्र तथा शतवीर्य एवं शतायुयुक्त हविष्य से मैंने इसे (आरोग्य को) उभारा है, ताकि यह संसार के सभी दुरितों (पापों-दुष्कर्मों) से पार हो सके। इन्द्रदेव इसे सौ वर्ष से भी अधिक आयु प्रदान करें ।।3।।
{यज्ञीय सूक्ष्म विज्ञान से नेत्रशक्ति, वीर्य, आयुष्य सभी बढ़ते हैं। मनुष्य कष्टों को पार करके शतायु हो सकता है।}

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताछतमु वसन्तान् ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।।4।।

(हे प्राणी) दीर्घायुष्य प्रदान करने वाली इस हवि के प्रभाव से मैं तुम्हें (निरोग स्थिति में) वापस लाया हूँ। अब तुम निरन्तर वृद्धि करते हुए सौ वसन्त ऋतुओं तथा सौ शरद ऋतुओं तक जीवित रहो। सर्वप्रेरक सविता देव, इन्द्रदेव, अग्निदेव और बृहस्पति तुम्हें शतायु प्रदान करें ।।4।।

प्र विशतं प्राणपानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
वयग्न्येङ्गयन्तु मृन्यवो यानाहुरितरा छतम् ।।5।।

हे प्राण और अपान ! जैसे भार वहन करने वाले बैल अपने गोष्ठ में प्रवेश करते हैं, वैसे आप क्षयग्रस्त रोगी के शरीर में प्रवेश करें। मनुष्यगण मृत्यु के कारण रूप जिन सैकड़ों रोगों का वर्णन करते हैं, वे सभी दूर हो जाएँ ।।5।।

इहैव स्तं प्राणपानौ माप गातमितो युवम् ।
शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः ।।6।।

हे प्राण और अपान ! आप दोनों इस शरीर में विद्यमान रहें। आप अकाल में भी इस शरीर का त्याग ना करें। इस रोगी के शरीर तथा उसके अवयवों को वृद्धावस्था तक धारण करें ।।6।।

जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि ध्रुवामि त्वा ।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्य१न्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितराञ्छतम् ।।7।।

हे मनुष्य ! हम आपको वृद्धावस्था तक जीवित रहने योग्य बनाते हैं और वृद्धावस्था तक रोगों से आपकी सुरक्षा करते हैं। वृद्धावस्था आपके लिए

कल्याणकारी हो। ज्ञानी मनुष्य मृत्यु के कारण रूप जिन रोगों के विषय में कहते हैं, वे समस्त रोग आपसे दूर हो जाएँ ।।7।।

अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्जवा ।
यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया ।
तं ते सत्यस्य हस्ताभयामुदमुञ्चद् बृहस्पतिः ।।8।।

जैसे गौ या बैल को रस्सी द्वारा बाँधा जाता है वैसे वृद्धावस्था ने आपको बाँध लिया है। जिस मृत्यु ने आपको पैदा होते ही अपने पाश द्वारा बाँध रखा है उस पाश को बृहस्पति देव ब्रह्मा के अनुग्रह से मुक्त कराएँ ।।8।।

अथर्ववेद {2/31}

इन्द्रस्य या मही दृषत क्रिमर्विश्वतस्य तर्हणी ।
तया पिनष्मि सं क्रिमीन् दृषदा खल्वाँ इव ।।1।।

बड़े यज्ञ की जो विशाल शिला प्रत्येक कृमि की नाश करने वाली है उससे सब कृमियों को यथा नियम पीस डालूं ।।1।।

दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरूमतृहम् ।
अल्गाण्डून्त्सर्वाछलुनान् क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ।।2।।

दिखाई देने वाले और न दिखाई देने वाले कृमिगण को मैंने नष्ट कर दिया है और भी भूमि पर रेंगने वाले व बुरे प्रकार से सताने व भिनभिनाने वाले को मैंने नष्ट कर दिया है। सब उपधानों में भरे हुए वेग वेग चलने वाले कीड़ों को वाणी (मन्त्रशक्ति) अथवा वच औषधि से हम मार डालें ।।2।।

अल्गण्डून हन्मि महता वधेन दूना अदूना अरसा अभूवन ।
शिष्टानशिष्टान् नि तिरामि वाचा यथा क्रिमीणा नकिरुच्छिषातै ।।3।।

उपधानों में भरे हुए जन्तुओं को बड़ी चोट से मैं मारता हूँ। तपे हुए और बिना तपे हुए नीरस हो गए हैं। बचे हुए दुष्टों को वाणी (मन्त्रशक्ति) अथवा वच औषधि से नीचे डालकर मार डालूं जिससे कीड़ों में से कोई भी न बचा रहे ।।3।।

अन्वान्त्र्यं शीर्षण्य१मथो पार्ष्टेयं क्रिमीन्।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ।।4।।

आंतो में, शिर में और पसलियों में रहने वाले कीड़ों को, नीचे-नीचे रेंगने वाले और छेद करने वाले व पीड़ा देने वाले तथा यज्ञ के विरोधाी सब कीड़ों को वाणी (मन्त्रशक्ति) अथवा वच औषधि से हम नाश करें ।।4।।

ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः ।
ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्व तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम् ।।5।।

जो कीड़े पहाड़ों में , वनों में, अन्न आदि औषधियों में, गौ आदि पशुओं में और जल में भीतर हैं और हमारे शरीर में प्रविष्ट हो गये हैं कृमियों के उस सब जन्म को मैं नाश करूं ।।5।।

क्षय रोग नाशक हवि

1. यज्ञ से क्षयरोग चिकित्सक ने यूनानी हकीमों के मतानुसार क्षयरोग को तीन श्रेणियों (स्तरों) का बताया है और तीनों श्रेणियों के लिए अलग-अलग हवन-सामग्री लिखी है, किन्तु तीनों स्तर की औषधियों को देखने पर पता चलता है कि 2—3 औषधियों को छोड़कर शेष सभी में मिश्रित हैं ।

2. तीनों श्रेणियों की औषधियों को संयुक्त करने पर उनकी संख्या लगभग 56 होती है जिनमें से 5—6 को छोड़कर शेष सभी इसी पुस्तक में पूर्व लिखित "सर्वरोग नाशक हवन सामग्री" में समाहित हैं, अतः क्षयरोग के नाशार्थ यज्ञ में सर्वरोग नाशक हवन सामग्री का प्रयोग ठीक रहेगा, उक्त हवन सामग्री में क्षीरकाकोली, पाण्डरी, खूबकला, सहदेवी, इन्द्रायण-जड़, किशमिश आदि थोड़ी मात्रा में मिला सकते हैं ।

3. गूग्गल-50 ग्राम, सफेद चन्दन-50 ग्राम, गिलोय-50 ग्राम, अडूसा-50 ग्राम, देशी कपूर-25 ग्राम । सभी का चूर्ण मिलाकर उसमें 100 ग्राम गौघृत मिला लें ।

उक्त हवि का दो भागकर प्रातः एवं सायं आग (अंगारे) पर क्षय रोग नाशक मन्त्रों से धूनि करें, धूएँ को कमरे में भरने दें, खिड़कियों और दरवाजों को भी बन्द कर सकते हैं ।

7. स्त्री रोग निवारक सूक्त

पूर्वकथन :-

1. बन्ध्यात्व (बांझपन) निवारण की कामना वाले अथर्ववेद काण्ड 03 सूक्त 23 को वीरप्रसूतिसूक्त तथा काण्ड 06 सूक्त 11 को पुंसवन सूक्त कहा गया है।

2. वीरप्रसूति सूक्त में संतानरहित स्त्री के लिये योग्य चिकित्सक, आचार्य अथवा पति की ओर से मन्त्रगान संकेतित है ।

3. उक्त सूक्त में -ऋषभ' (मन्त्र संख्या 04) को गर्भशक्तिदायक औषधि भी कहा गया है। विद्वानों ने इसे अष्टवर्ग की औषधि ऋषभक कहा है । यह वीर्यवर्धक व वाजीकारक कही गई है । हिमालय के शिखर पर मिलने का उल्लेख है। इसके अभाव में विदारीकन्द का ग्रहण किया जा सकता है । अगले मन्त्र संख्या 06 के आधार पर ऋषभक को वृष्टि के जल से घिसकर सेवन करना बन्ध्यात्व निवारण में सहायक हो सकता है।

टीप :- (क) अन्यत्र अथर्ववेद काण्ड 04 सूक्त 17 के मंत्र छठवें सातवें में अपामार्ग को बन्ध्यात्व (अगोता, अनपत्यता) निवारक औषधि कहा गया है। आयुर्वेदिक विश्लेषकों के द्वारा श्वेत अपामार्ग को बन्ध्यात्वनिवारक तथा रक्त अपामार्ग को नपुंसकता (अक्षपराजय) निवारक बताया गया है।

(ख) अन्यत्र अथर्ववेद 05 / 05 / 08 में लाक्षा (लाख, सिलाची) को भी कानीनः अर्थात् नवयुवतियों को गर्भशक्ति देने वाली औषधि कहा है ।

4. पुंसवन सूक्त में प्रार्थना आदि नहीं है, अपितु शमीवृक्ष पर चढ़े पीपल (अश्वत्थवन्दा) को गर्भधारण या सन्तानप्राप्ति का साधन बताया है । मन्त्रार्थों के साथ उल्लिखित ब्रह्मवर्चस की टिप्पणी द्रष्टव्य है ।

(क) आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वतीकृत संस्कार विधि में गर्भस्थिति के दूसरे या तीसरे महीने में अनुष्ठेय पुंसवन संस्कार का वर्णन है। जिसमें गर्भिणी स्त्री के सुंघाने को लिये एक योग लिखा है वह है :- वट (बड़) की जटा या कोंपल, गिलोय (सोमलता) एवं ब्राह्मी को पीस कर कपड़े से रस छानकर नसवार की तरह सुंघाने को कहा हैं । सूक्ष्म वैद्यक विधि के अनुसार पुत्र की कामना वाली अपने दाहिने नाक से तथा पुत्री की कामना वाली अपने बायें नाक से उक्त रस को सूंघे ।

(ख) नारियल के अन्दर खुभे फूल (कील) अथवा मोरपंख के चांद को गुड़ या खोवे के साथ तीसरे महीने में गर्भिणी स्त्री बछड़े वाली गाय के दूध के साथ निगल ले तो इसे पुत्रदायक योग कहा गया है।

5. ऋग्वेद 10/162 के छः मन्त्रों, जो अथर्ववेद 20/96 के 11 से 16 मन्त्रों में भी हैं उनमें योनिदोष, गर्भस्राव, जातघातक (मरे बच्चे होना) रोगों की चिकित्सा लिखी है।

(क) उक्त सूक्त में उदुम्बर (गूलर) वृक्ष को ब्रह्म तथा चित्रक (चिता, चीता, दहन, व्हाईट लेडवर्ट या सीलोन या प्लुम्बागो) औषधि को अग्नि कहा गया है।

6. अथर्ववेद काण्ड 02 सूक्त 25 गर्भह्रास निवारक सूक्त है इस सूक्त में पृश्निपर्णी (चित्रपर्णी, लक्ष्मणा, कण्वजम्भनी, सहस्वती, सहमाना, युरेरिया पिंक्टा यो हर्मियोनिटिस कार्डिफोलिया) का गर्भरक्षक औषधि कहा है।

7. सुखपूर्वक प्रसव कराने के लिए अथर्ववेद काण्ड 01 सूक्त 11 को नारी सुखप्रसूति सूक्त कहा गया है।

(क) महर्षि दयानन्द सरस्वतीकृत संस्कार विधि में जातकर्म संस्कार बहुत महत्वपूर्ण है जिसमें मनोवैज्ञानिक मन्त्रचिकित्सा, घृत-मधु चटाना एवं चावल-जौ पीसकर वस्त्र से छाने हुए पानी का प्रयोग तथा भात और सरसों मिलाकर 10 दिनों तक हवन करने का विधान किया गया है।

(ख) अपामार्ग (चिरचिटा) की जड़ को प्रसूता के कमर में बांधने से शीघ्र प्रसव हो सकता है, प्रसव के बाद अपामार्ग शीघ्र हटा लें।

7/1. वीर प्रसूति सूक्त

अथर्ववेद (03/23)
{ऋषि-ब्रह्मा। देवता-चन्द्रमा या योनि या माता।
छन्द अनुष्टुप, 5 उपरिष्टात् भुरिक् बृहती, 6 स्कन्धोग्रीवी बृहती।}

येन वेहद् बभूविथ नाशयामसि तत् त्वत्।
इदं तदन्यत्र त्वपद दूरे नि दध्मसि ।।1।।

हे स्त्री ! जिस पाप या पापजन्य रोग के कारण आप बन्ध्या हुई हैं, उस रोग को हम आपसे दूर करते हैं। यह रोग पुनः उत्पन्न न हो, इसलिए इसको हम आपसे दूर फेंकते हैं।।1।।

आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान बाण इवेषुधिम्।
आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः।।2।।

हे स्त्री! जिस प्रकार बाण तूणीर में सहज ही प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार पुंसत्व से युक्त गर्भ आपके गर्भाशय में स्थापित हो। आपका वह गर्भ दस महीने तक गर्भाशय में रहकर वीर पुत्र के रूप में उत्पन्न हो ।।2।।

पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम् ।
भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान्।।3।।

हे स्त्री! आप पुरूष लक्षणों से युक्त पुत्र पैदा करें और उसके पीछे भी पुत्र पैदा हो । जिन पुत्रों को आपने उत्पन्न किया है तथा जिनको इसके बाद उत्पन्न करेंगी, उन सभी पुत्रों की आप माता हों ।।3।।

यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति च ।
तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव ।।4।।

हे स्त्री! जिन अमोघ वीर्यों के द्वारा बैल गौओं में गर्भ की स्थापना कर बछड़े उत्पन्न करते हैं, वैसे ही अमोघ वीर्यों के द्वारा आप पुत्र प्राप्त करें। इस प्रकार आप गौ के सदृश पुत्रों को उत्पन्न करती हुई, अभिवृद्धि को प्राप्त हों ।।4।।

कृणोमि ते प्राजापत्यमा योनिं गर्भ एतु ते।
विन्दस्य त्वं पुत्रं नारि यस्तुभ्यं शमसच्छमु तस्मै त्वं भव।।5।।

हे स्त्री! हम आपके निमत्त प्रजापति द्वारा निर्धारित संस्कार करते हैं। इसके द्वारा आपके गर्भाशय में गर्भ की स्थापना हो। आप ऐसा पुत्र प्राप्त करें, जो आपको सुख प्रदान करे तथा जिसको आप सुख प्रदान करें ।।5।।

यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरूधां बभूव ।
तास्त्वापुत्रविद्याय दैवीः प्रावन्त्वोषधयः ।।6।।

जिन औषधियों के पिता द्युलोक हैं और माता पृथ्वी है तथा जिनकी वृद्धि का मूल कारण समुद्र (जल) है, वे दिव्य औषधियाँ पुत्र लाभ के लिए आपकी विशेष रूप से रक्षा करें ।।6।।

7/2. पुंसवन सूक्त

अर्थववेद (06/11)
{ऋषि-प्रजापति। देवता-रेतस्, 3 प्रजापति अनुमति, सिनीवाली।
छन्द-अनुष्टुप ।}

जब पुत्र की कामना से गर्भिणी का संस्कार होता है, तो उसे पुंसवन कहते हैं और जब कन्या के लिए वह किया जाता है तो उसे स्त्रैषूयं' कहते हैं। इस सूक्त में दोनों के लिए उपचारों के संकेत किए गए हैं मन्त्रों के गठन रहस्यात्मक हैं तथा उन पर शोध कार्य अपेक्षित है ।

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसुवन कृतम्।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वा भरामसि ।।1।।

शमी पर जब अश्वत्थ आरूढ़ होता है तो पुंसवन किया जाता है। इससे पुत्र प्राप्ति का योग बनता है । उस प्रभाव को हम स्त्रियों में भर देते हैं ।।1।।

{शमी के वृक्ष पर पीपल जमे (उगे), तो उससे ओषधि योग बनाकर, स्त्री को देने से पुत्रोत्पत्ति का योग बनने का यहां संकेत मिलता है, जिस पर शोध अपेक्षित है। दूसरा अर्थ यह निकलता है कि अश्व रूप (सशक्त) नर-शुक्र, जब सौम्य नारी-रज से संयुक्त होता है, तब पुत्र का योग बनता है। इस अनुकूलता को औषधियों तथा मन्त्रोपचार द्वारा नारी में स्थापित करने का भाव भी यहाँ ग्राह्य है ।}

पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनु षिच्यते।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिरब्रवीत् ।।2।।

पुरूषत्व ही रेतस् (उत्पादक शुक्र) बनता है । उसका आधान स्त्री में किया जाता है, तब पुत्र उत्पत्ति का योग बनता है । यह प्रजापति (प्रजा उत्पन्न करने वाले देव या विशेषज्ञ) का कथन है ।।2।।

प्रजापतिरनुमतिः सिनीबाल्य चीक्लृपत्।
स्त्रैषूयमन्यत्र दधत् पुमांसमु दधदिह ।।3।।

अन्यत्र (उक्त अनुशासन से भिन्न स्थिति में) प्रजापति तथा अनुमति

एवं सिनीवाली देवियां गर्भधारण कराती है, तो स्त्रैषूय (कन्या उत्पत्ति) का योग बनता है, किन्तु उस (पूर्वोक्त) मर्यादा से पुत्र की ही उत्पत्ति होती है ।।3।।

{यहाँ भाव यह है कि जब प्रजापति (प्रजा उत्पन्नकर्ता) की अनुमति से नारी गर्भ धारण करती हैं, तो कन्या उत्पत्ति का योग बनता है तथा पूर्वोक्त विधि से पुत्र योग बनता है । मन्त्र क्रमांक 2 में पुरूष शुक्र के स्त्री रज के आधान तथा मन्त्र क्र 3 में पुरूष शुक्र में स्त्री रज के आधान का भाव भी बनता है, जिससे पुत्र या पुत्री प्राप्ति का योग बनने की बात कही गई है । वेद में पौर्णमासी को अनुमति तथा अमावास्या को सिनीवाली कहते हैं । प्रजापति को संवत्सर भी कहा जाता है ।}

7/3. गर्भदोष निवारक सूक्त

अथर्ववेद (20/96 मन्त्र संख्या 11 से 16)
(ऋग्वेद 10/162/1 से 6)

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः।
अमीवा यस्ते गर्भ दुर्णामा योनिमाशये ।।11।।

जो रोगभूत कृमि हे स्त्री ! तेरे गर्भ को, योनि को आक्रान्त किये हुए है उसे ब्रह्मवृक्ष से एक योग होकर रक्तादिभक्षक कृमियों का नाशक चित्रक यहां से नष्ट करे ।।11।।

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ।।12।।

हे स्त्री! जो रोगभूत कृमि तेरे गर्भ और योनि को आक्रान्त किये हुए हैं उस कच्चा मांस खाने वाले कृमि को ब्रह्मवृक्ष के साथ एक योग होकर नितान्त नष्ट कर देता है ।।12।।

यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्यनुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ।।13।।

जो तेरे गर्भाशय में वीर्यरूप में गिरते हुए स्थित हुए गर्भ को नष्ट करता है जो गर्भाशय में गति करते हुए को नष्ट करता है जो उत्पन्न हुए जात बालक को मारना चाहता है उस कृमि को यहां से हम नष्ट करते हैं ।।13।।

यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये।
योनिं यो अन्तरा रेहि तमितो नाशयामसि।।14।।

जो हे स्त्री ! तेरी जंघाओं को पृथक करता है कृमि संकुचित नहीं होने देता है या जंघा सन्धियों-दोनों वंक्षण में घूमता है। पति पत्नी के मध्य में-गर्भार्थ समागम में आक्रान्त हो जाता है-मध्य में अवरोधक होकर वीर्य को अन्दर नहीं जाने देता है जो भीतर योनि को चाटता है-गर्भ में प्रविष्ट वीर्य को चाट जाता है उसे यहां से हम नष्ट करते हैं ।।14।।

यस्त्वा भ्राता पति र्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि।।15।।

जो 'अमीवा दुर्णामा' गर्भ विध्वंसक और योनिदूषक कृमि भ्राता या पति होकर-भ्राता के समान सहयोगी होकर या पति के समान एकांग होकर या जार के सदृश संगत होकर तुझे प्राप्त होता है और जो तेरी सन्तति को मारना चाहता है उसे यहां से नष्ट करते हैं ।।15।।

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्ययते।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि।।16।।

जो तुझे अंधकार रूप स्वप्न से मूर्छित करके प्राप्त होता है जो तेरी प्रजा को मारना चाहता है उसे यहां से हम नष्ट करते हैं।।16।।

7/4. गर्भह्रास निवारक सूक्त

अथर्ववेद (02/25)
(ऋषि-चातन, देवता-पृश्निपर्णी, छन्द-अनुष्टुप 4, भुरिक अनुष्टुप)

शं नो देवी पृश्निपर्ण्यशं निर्ऋत्या अकः।
उग्रा हि कणवजम्भनी तामभक्षि सहस्वतीम्।।1।।

पृश्निपर्णी ओषधि देवी हमारे लिये सुख-स्वास्थ्य देती है, रोगोत्पत्ति के लिये प्रतिकूलता करती है वह अवश्य तीक्ष्ण गुहारोग कृमि को नष्ट करने वाली है, रोगों का तिरस्कार करने वाली उस ओषधि को मैं सेवन करती हूँ ।।1।।

सहमानेयं प्रथमा पृश्निपर्ण्यजायत।
तयाहं दुर्णाम्नां शिरो वृश्चामि शकुनेरिव।।2।।

यह पृश्निपर्णी ओषधि रोगो का तिरस्कार करने वाली मुख्य उत्पन्न हुई है उससे मैं दुर्णामा कृमियों के सिर को पक्षी के सिर की भांति छेदन करती हूं।।2।।

अरायमसृक्पावानं यश्च स्फीतिं जिहीर्षति।
गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च ।।3।।

क्षीणता लाने वाले, रूधिर पीने वाले कृमि को और जो शरीर वृद्धि को हरना चाहता है, उस ऐसे गर्भ खाने वाले निमीलन जैसे चबक चबक करने वाले कृमि को या कृमिभूत रोग को हे पृश्निपर्णी ओषधि! तू नष्ट कर और अपना प्रभाव जमा।।3।।

गिरिमेनाँ आवेशय कण्वान् जीवितयोपनान्।
तास्त्वं देवि पृश्निपर्ण्यग्निरिवानुदहन्निहि।।4।।

हे पृश्निपर्णी ओषणि देवी! तू इन जीवित गर्भ को नष्ट करने वाले कृमियों-कृमि-भूत रोगों को पर्वत पर पहुँचा दे-ऊँचे उड़ा दे-छिन्न भिन्न करदे उनको अग्नि की भांति जलाती हुई प्राप्त हो ।।4।।

पराच एनान् कण्वान् जीवितयोपनान्।
तमांसि यत्र गच्छन्ति तत् क्रव्यादो अजीगमम् ।।5।।

इन जीवित गर्भ घातक कृमियों को दूर भगा जहां अन्धेरे प्राप्त हैं, उस स्थान को उक्त कच्चे मांस के भंक्षक कृमियों को मैं पहुँचाती हूँ ।।5।।

7/5. सुख-प्रसूति सूक्त

अथर्ववेद (01/11)
(ऋषि-अथर्वा, देवता-पूषा, अर्यमा, वेधा)

वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः।
सिस्रतां नार्यृतप्रजाता वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उ ।।1।।

हे सर्वपोषक परमेश्वर! यह प्रार्थना (भक्ति) या आहुति तुम्हारे लिये है। सबका रचनेवाला, दाता व न्यायकारी ईश्वर इस समय सन्तान के जन्म को

सुगम करे। पूरे गर्भवाली, नर का हित करने वाली नारी सन्तान उत्पन्न करने के लिये सावधानीपूर्वक अंगों को ढीला करे ।।1।।
(प्रसव समय होने पर पति, विद्वान् आदि लोग प्रसूता की प्रसन्नता के लिये हवन करें तो अत्युत्तम होवे।)
नोट :- महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत संस्कार विधि में दिये जातकर्म संस्कार करें।

चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूम्या उत।
देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्णुवन्तु सूतवे ।।2।।

द्युलोक एवं भूमि को चारों दिशाएं घेरे हैं। दिव्य पंच भूतों ने इस गर्भ को घेरा-(धारण किया) हुआ है, वे ही इस आवरण से मुक्त करें-बाहर करें ।।2।।

सूषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि।
श्रथया सूषणे त्वमव त्वं बिष्कले सृज ।।3।।

हे प्रसवशील माता अथवा प्रसव सहायक देव ! आप गर्भ को मुक्त करें। गर्भ मार्ग को हम फैलाते हैं, अंगों को ढीला करें और गर्भ को नीचे की ओर प्रेरित करें ।।3।।

नेव मांसे न पीवसि नेव मज्जवाहतम् ।
अवैतु पृश्नि शेवलं शुने जराय्वत्तवेऽव जरायु पद्यताम् ।।4।।

गर्भस्थ शिशु को आवेष्टित करने वाले (समेट कर रखने वाली थैली) 'जरायु' प्रसूता के लिए मांस, मज्जा या चर्बी की भाँति उपयोगी नहीं अपितु अन्दर रह जाने पर गम्भीर दुष्परिणाम प्रस्तुत करने वाली सिद्ध होती है। सेवार (जल की घास) की जैसी नरम 'जेरी' पूर्णरूपेण बाहर आकर कुत्तों का आहार बने ।।4।।

वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके।
वि मातरं च पुत्रं च वि कुमारं जरायुणाव जरायु पद्यताम् ।।5।।

हे प्रसूता ! निर्विघ्न प्रसव के लिए गर्भमार्ग, योनि एवं नाड़ियों को विशेष प्रकार से खोलता हूँ। माँ व बालक को नाल से अलग करता हूँ। जेरी से शिशु को अलग करता हूँ। जेरी पूर्णरूपेण पृथ्वी पर गिर जाए ।।5।।

यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणः ।
एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुणा पताव जरायु पद्यताम् ।।6।।

जिस प्रकार वायु वेगपूर्वक प्रवाहित होती है। पक्षी जिस वेग से आकाश में उड़ते हैं एवं मन जिस तीव्रगति से विषयों में लिप्त होता है, उसी प्रकार दसवें माह गर्भस्थ शिशु जेरी के साथ गर्भ से मुक्त होकर बाहर आए ।।6।।

स्त्री रोग निवारक हवन सामग्री

1. गर्भाशय केन्सर अथवा प्रदर नाशक धूपः-

1. गूलर की छाल - 10 ग्राम
2. गूलर के फल - 10 ग्राम
3. अशोक की छाल - 10 ग्राम
4. अर्जुन की छाल - 10 ग्राम
5. लोध्र - 10 ग्राम
6. माजूफल - 10 ग्राम
7. दारूहल्दी - 10 ग्राम
8. हल्दी - 10 ग्राम
9. नारियल (गोला) - 10 ग्राम
10. तिल - 10 ग्राम
11. जौ - 05 ग्राम
12. चिकनी सुपारी - 10 ग्राम
13. शतावर - 10 ग्राम
14. काकजंघा - 10 ग्राम
15. मोचरस - 10 ग्राम
16. खस - 10 ग्राम
17. मंजिष्ठ - 10 ग्राम
18. अनार का फूल - 10 ग्राम
19. सफेद चन्दन - 10 ग्राम
20. लाल चन्दन - 10 ग्राम
21. गंधाबिरोजा - 10 ग्राम
22. जामून के पत्ते - 10 ग्राम

23. धाय (धवई, धातकी) के पत्ते - 10 ग्राम
24. गूग्गल - 10 ग्राम
25. नरवी या नागकेशर - 5 ग्राम
26. तुलसी के पत्ते - 10 ग्राम
27. शिवलिंगी बीज - 10 ग्राम
28. कमलगट्टा - 10 ग्राम
29. चावल - 10 ग्राम
30. बड़ी इलायची - 10 ग्राम
31. कायफल - 10 ग्राम
32. केसर - 01 ग्राम
33. शक्कर (खाण्ड) - 100 ग्राम

{यह एक दिन की मात्रा है, दिनों के अनुसार मात्रा बढ़ा लेवें ।}

सबको कूटकर मिला लें और उसमें 200 ग्राम गौघृत मिलाकर दिन में तीन बार लगभग 125—125 ग्राम सामग्री से धूनि करें। रोग की स्थिति के अनुसार मात्रा अथवा हवन का समय कम या अधिक कर सकते हैं।

कुण्ड या किसी पात्र (बर्तन) में गूलर की समिधाओं से अग्नि तैयार किया जाए, खुले स्थान में जिससे धुआं निकल जाए। आग को रोगी कक्ष में लाकर अंगारों पर स्त्री रोग निवारक मन्त्रों से हवन करें। रोगिणी को चारपाई अथवा छेददार कुर्सी में बैठाकर योनिद्वार में धुआं ग्रहण करें। मुख तथा नाक से भी धुआं भीतर की ओर जाने दें। अग्नि ठंडी होने पर राख (भस्मी) को छान लें और उसें चार गुना अधिक गंगाजल में मिलाकर बोतल में सुरक्षित रखें, उक्त भस्मद्राव को प्रातःकाल निहार मुख 10 ग्राम पिलाएं।

<u>2. रजः शोधिनी एवं रजःप्रवर्तिनी हवन धूप :-</u>

गूलर या बेर अथवा पलाश (ढाक) की समिधा से आग जलाकर निर्धूम करें और उस अंगारे पर सूखा गंधा विरोजा डालकर योनिद्वार में धूनि दें।

<u>3. योनिशूल नाशक हवनधूप :-</u>

त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला) - 1—1 भाग
लहसून, पीली सरसों और चावल - 2—2 भाग ।

सबको मिलाकर अंगारे पर धूनि दें, प्रभावित अंग से धुआं ग्रहण करें अथवा केवल अजवाईन की धूनि दी जा सकती है अथवा गूग्गल और घी की धूनि दें।

<u>4. सम्पूर्ण योनिदोष नाशिनी धूनी :-</u>

जम्बू धातकिपर्णैस्तद्भवकल्कैश्च धूपितो योनिः ।
त्यजति समस्त विकारं जन्मान्तरं संचितं चापि ।।
-बंगसेन

- जामुन के पत्ते और धाय के पत्ते पीसकर आग पर उसकी धूप योनिमार्ग में दें तो उससे योनि के जन्म-जन्मान्तर से संचित विकार भी नष्ट हो जाते हैं।

<u>5. गर्भ निरोधक हवन धूप :-</u>

पहले भी गर्भ विरोध के लिये उपाय प्रचलित रहे हैं, यथा :-

धूपिते योनिरन्ध्रे च निम्ब काष्ठेन युक्तितः।
ऋत्वन्ते रमतेया स्त्री न सा गर्भमवाप्नुयात्।।
- योग तरंगिणी

अर्थात् ऋतुकाल के अन्त में नीम की लकड़ी का चूर्ण करके अग्नि पर डालकर योनि में धूनी देने से गर्भ नहीं ठहरता।

<u>6. गर्भपात रोकने वाली हवन धूप :-</u>

अनार की छाल, कबूतर की बीट और गाजर के बीज-तीनों समान भाग लेकर चूर्ण करें और गर्भिणी के गर्भमार्ग में धूनी दें।

<u>7. कान्तिवर्द्धक हवन सामग्री :-</u>

लाल चन्दन, मंजिष्ठ, लोध्र, कूठ, प्रियंगु पुष्प, बड़ के अंकुर, मसूर, गुलाबफूल और बादाम की गिरी (मिंगी) समानभाग लेकर हवन करें तथा उसका धुआं मुख पर लें तो झाई, मुंहासे दूर होकर मुख पर कान्ति आ जाती है।

प्रचलित मान्यताओं के अनुसार अग्नि प्रज्वलित होने पर कार्बन द्विओषिद् वायु की उत्पत्ति होती है, किन्तु वैदिक मान्यतानुसार यज्ञाग्नि से प्राणप्रद वायु का निर्माण होता है।

8. केश (बाल) रोग निवारक सूक्त

पूर्वकथन :-

1. अथर्ववेद काण्ड 06 सूक्त 136 एवं 137 में केश रोग के निवारणार्थ मन्त्र उल्लिखित हैं ।

2. उक्त सूक्तों के देवता (प्रतिपाद्य विषय) नितत्नी देवीनामक औषधि है, जिसे सौराष्ट्रमृत्तिका (गोपीचन्दन) बताया गया है । जैसे मुल्तानी मिट्टी केशों के लिये उपयोगी है, उससे शिर धोते हैं इसी प्रकार सौराष्ट्रमृत्तिका उससे भी अधिक गुणकारी है।

3. काकमाची फल, जीवन्ती फल, नीलिनी (नील) और भृंगराज (भांगरा) औषधियों को भी केशवर्द्धक कहा गया है।

8/1. केशदृंहण सूक्त

अथर्ववेद (06 / 136)
(ऋषि-वीतहव्य । देवता-नितत्नी । छन्द-अनुष्टुप,
2 एकावसाना द्विपदा साम्नी बृहती ।)

देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योषधे।
तां त्वा नितत्नि केशेभयो दृंहणाय खनामसि ।।1।।

हे ओषधे! तुम पृथ्वी पर उत्पन्न हुई हो। तिरछी होकर फैलती हुई हे ओषधि देवी । हम आपको अपने केशों को सुदृढ़ करने के लिए, खोदकर संगृहीत करते हैं ।।1।।

दृंह प्रत्नाञ्जनयाजाताञ्जातानु वर्षीयसस्कृधि ।।2।।

हे दिव्यौषधे ! तुम केशों को लम्बे, सुदृढ़ करो एवं जो अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं, उन केशों को उत्पन्न करो ।।2।।

यस्ते केशोऽवपद्यते समूलो यश्च वृश्चते।
इदं तं विश्वभेषज्याभि षिञ्चामि वीरूधा।।३।।

तुम्हारे जो केश गिर जाते हैं, जो मूल से टूट जाते हैं, उस दोष को औषधि रस से भिगोकर दूर करते हैं ।।3।।

8/2. केशवर्धन सूक्त

अथर्ववेद (06 / 137)
(ऋषि-वीतहव्य । देवता-नितत्नी। छन्द-अनुष्टुप)

यां जमदग्निरखनद् दुहित्रे केशवर्धनीम्।
तां वीतहव्य आभरदसितस्य गृहेभ्यः ।।1।।

जिस अग्निहोत्री गृहस्थ ने अपनी कन्या के केशों की वृद्धि के लिए, जिस ओषधि को खोदा, उसे नवविवाहित व्यक्ति स्त्री के काले बाल हेतु घर में लाता है ।।1।।

अभीशुना मेया आसन् व्यामेनानमेयाः।
केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि ।।2।।

हे केश बढ़ाने की इच्छा करने वाले! तुम्हारे केश पहले तो अंगुलियो द्वारा नापे जा सकते थे, वे अब 'व्याम' (दोनो हाथ फैलाने पर जो लम्बाई होती है) जितने लम्बे हो गये हैं। सिर के चारों ओर के काले बाल 'नड' नाम वाले तृणों के समान शीघ्रता से बढ़ें ।।2।।

दृंह मूलमाग्रं यच्छ वि मध्यं यामयौषधे।
केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि ।।3।।

हे ओषधे ! तुम केशों के अग्रभाग को लम्बा, मध्य भाग को स्थिर एवं मूलभाग को सुदृढ़ करो । 'नड' (नरकट) जैसे नदी के किनारे पर शीघ्रता से बढ़ते हैं, वैसे ही सिर के चारों ओर काले केश बढ़ें ।।3।।

केश (बाल) रोग निवारक हवन धूप

1. गोखरू और तिल के फूल समभाग लेकर पीसें तथा घृत, शहद मिलाकर अंगारे पर हवन करें, उसका धूम सिर पर लें । बाल लम्बे होते हैं ।

2. इन्द्रायण के बीजों का चूर्ण कर लें और उसका हवन कर सिर पर धूनी दें । बाल काले होते हैं ।

3. त्रिफला, नील के पत्ते, भृंगराज (भांगरा) समान भाग लेकर हवन करें, सिर पर धूनी दें। बाल काले होते हैं ।

9. कास (खांसी) निवारक सूक्त

पूर्वकथन :-

1. खांसी सब रोगों की माता है (लड़ाई का घर हांसी और रोग का घर खांसी)।

2. कास (खांसी) की तीन स्थितियां होती है :-

(क) श्वास रोग के साथ। (श्वास रोग निवारण प्रकरण देखें)

(ख) राजयक्ष्मा (टी.बी.) के साथ। (क्षयरोग निवारण प्रकरण देखें।)

(ग) स्वतंत्र रूप से होने वाली खांसी दो प्रकार की होती है - गीली एवं सूखी खांसी

3. गीली खांसी निवारक अथर्ववेद काण्ड 01 सूक्त 12 का तीसरा मन्त्र है :-

मुंच शीर्षक्त्वा उत कास एनं परूष्परूराविवेशा यो अस्य।
यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्त्सचतां पर्वताश्च ।।

- उन्माद आदि शिरोरोग से तथा जो वात, पित्त या कफ से उत्पन्न खांसी है, जो इस रोगी के जोड़-जोड़ में घुसी हुई है, उससे इस रोगी को छुड़ा। वह रोगी वनस्पतियों और पर्वतों का सेवन करें।

{गीली खांसी, पर्वतों पर रहने से दूर होने का संकेत हैं}

4. शुष्क (सूखी) खांसी की चिकित्सा अथर्ववेद काण्ड 06 सूक्त 105 में दी है :-

यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्रपत मनसोऽनु प्रवाय्यम् ।।1।।

हे खांसी रोग ! तू जैसे मन संकल्पवृत्तियों के साथ शीघ्रता से दूर चला जाता है ऐसे ही मन के वेग के साथ संकल्पक्रम के अनुसार दूर हो जा ।।1।।

(सूखी खांसी को मन के संकल्प से दूर करने का वर्णन है।)

यथा बाणः सुसंशितः परापतत्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्रपत पृथिव्या अनु संवतम् ।।2।।

हे खांसी! जैसे सुतीक्ष्ण बाण वेगवत्त से लक्ष्य पर गिरता है, ऐसे ही तू पृथिवी की भूपरत (रेही) के साथ नष्ट हो जा ।।2।।

(यहां पृथिवी का क्षार, रेह या रेही मिट्टी के द्वारा सूखी खांसी की चिकित्सा बतलाई है।)

यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्रपत समुद्रस्यानु विक्षरम् ।।3।।

हे खांसी! जैसे सूर्य की किरणें वेगवत्ता से गिरती हैं, ऐसे ही तू समुद्र के फेन के साथ शान्त हो जा ।।3।।

(यहां मन्त्र में सूखी खांसी को समुद्रफेन के द्वारा दूर करने का विधान है)

यथा :-

अब्धिफेनः कफं व कण्ठरोगं च विनाशयेत्।
(राजनिघन्टु)

कास (खांसी) नाशक हवन धूप

1. लोहबान (लोभान), बच, पुष्करमूल (पोहकरमूल) और वासपत्र समान भाग कूटकर घृत मिला लें तथा उससे जलती अग्नि ज्वाला में हवन करें।

2. चमेली के पत्ते 40 ग्राम, राल 10 ग्राम, हल्दी 10 ग्राम, पुनर्नवा 05 ग्राम और इमली की छाल 05 ग्राम कूटपीस लें। थोड़ा सा केशर एवं घी शहद मिला लें। अंगारे पर धूनी दें।

3. पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) को कूटपीस लें और उसे गाय के दूध के छींटे देकर नम कर लें। अंगारे पर थोड़ी मात्रा में धूनी दें।

4. मुनक्का, बादाम, शक्कर, लोभान, नागरमोथा और कटेरी का फल समानभाग कूटपीसकर घी व मधु मिलावें अंगारे पर थोड़ी मात्रा में डालकर धुआं सेवन करें।

10. श्वास रोग निवारक सूक्त

पूर्वकथन :-

1. श्वास नलियों में कफ जम जाने, शोध हो जाने अथवा उनके सिकुड़ जाने से श्वास रोग होता है।
2. अथर्ववेद काण्ड 05 सूक्त 04 को विद्वानों ने श्वासरोग निवारक सूक्त लिखा है। साथ ही इस सूक्त में ज्वर, शिरोरोग, नपुंसकत्व तथा नेत्र रोगनिवारण की भी कामना की है।
3. इस सूक्त का देवता कुष्ठ औषधि है, कुष्ठ रोग नहीं।
4. विद्वानों ने कुष्ठ से पुष्करमूल (पोहकर) का ग्रहण करना लिखा है। वैसे कुष्ठ को कूठ भी कहा गया है।
5. इस सूक्त में कथित अश्वत्थ अर्थात् पीपल, हिरण्य अर्थात् सोना (स्वर्ण भस्म) को भी श्वास नाशक कहा गया है।

श्वास रोग निवारक सूक्त

अथर्ववेद (05/04)

{ऋषि-भृग्वङ्गिरा। देवता-कुष्ठ, यक्ष्मनाशन। छन्द-अनुष्टुप, 5 भूरिक् अनुष्टुप, 6 गायत्री, 10 उष्णिक, गर्भा निवृत अनुष्टुप्।}

इस सूक्त में कुष्ठ नामक औषधि का वर्णन हैं वैद्यक ग्रन्थ 'भावप्रकाश' में इसके गुण-धर्मों का वर्णन हैं। इसे उष्ण, कटु स्वाद वाली, शुक्र उत्पादक, वात, विसर्प, कुष्ठ, कफ आदि रोगों को दूर करने वाली कहा गया है -

यो गिरिष्वजायथा वीरूधां बलवत्तमः।
कुष्ठेहि तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्नितः।।1।।

हे व्याधिनिवारक कुष्ठ ओषधे ! आप पर्वतों में उत्पन्न होने वाली तथा समस्त ओषधियों में अत्यधिक शक्तिदायक है। आप कष्टदायी रोगों को विनष्ट करती हुई यहाँ पधारें।।1।।

सुपर्ण सुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि।
धनैरभि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम् ।।2।।

कमल के उत्पत्ति स्थान हिमालय शिखर पर उत्पन्न इस औषधि को आरोग्य धनरूप सुनकर लोग वहाँ जाते हैं और व्याधि निवारक इन औषधि को प्राप्त करते हैं।।2।।

अश्वत्थो देवसदनस्तृीयस्यामितो दिवि।
तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ।।3।।

यहाँ से तीसरे द्युलोक में जहां देवों के बैठने का स्थान 'अश्वत्थ' है, वहाँ पर देवों ने अमृत का बखान करने वाली इस 'कुष्ठ' ओषधि को प्राप्त किया।।3।।

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि।
तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ।।4।।

कमल सरोवर में सोने के बन्धन वाली स्वर्णिम नौका चलती है। वहाँ पर देवों ने अमृत के पुष्प 'कुष्ठ' औषधि को प्राप्त किया था।।4।।

हिरण्ययाः पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्यया।
नावो हिरण्ययीरासन् याभिः कुष्ठं निरावहन् ।।5।।

जिससे (जिस माध्यम से) 'कुष्ठ' औषधि लायी गयी थी, उसके मार्ग, उसकी बल्लियाँ तथा उसकी नौकाएं सुनहरी थीं।।5।।

इमं मे कुष्ठ पुरूषं तमावह तं निष्कुरू।
तमु मे अगदं कृधि ।।6।।

हे कुष्ठ ओषधे ! आप हमारे इस पुरूष को उठाकर पूर्णतया रोगरहित करें और इसे आरोग्य प्रदान करें।।6।।

देवेभ्यो अधि जातोऽसि सोमस्यासि सखा हितः।
स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै मृड ।।7।।

हे कुष्ठ औषधे! आप देवताओं के द्वारा उत्पन्न हुई हैं। आप सोम औषधि की हितकारी सखा हैं। इसलिए आप हमारे इस पुरूष के व्यान, प्राण और आँखों को सुख प्रदान करें।।7।।

उदङ् जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जनम्।
तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि वि भेजिरे ।।8।।

वह 'कुष्ठ' नाम वाली औषधि हिमालय के उत्तर में उत्पन्न हुई तथा पूर्व दिशा में मनुष्यों के समीप लायी गई। वहाँ पर उसके श्रेष्ठ नामों का लोगों ने विभाजन किया ।।8।।

उत्तमो नाम कुष्ठास्युत्तमो नाम ने पिता।
यच्क्षं च सर्व नाशय तक्मानं चारसं कृधि ।।9।।

हे कुष्ठ औषधे! आपका और आपके पिता (उत्पादक हिमालय) दोनों का ही नाम उत्तम है। आप समस्त प्रकार के क्षय रोगों को दूर करें और कष्टदायी ज्वर को निर्वीर्य करें ।।9।।

शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वो३रपः।
कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करद् दैवं समह वृष्ण्यम् ।।10।।

सिर की व्याधि, आंखों की दुर्बलता और शारीरिक दोष, इन सब रोगों को 'कुष्ठ' औषधि ने दिव्य बल को प्राप्त करके दूर कर दिया ।।10।।

श्वास-नाशक हवन धूप

1. **कनकस्य फलं शाखां पत्रं संकुट्य यत्नतः ।**
शोषयित्वा च तद्धूमपानाच्छ्वासो विनश्यति ।।

– धतूरे के फल, शाखा और पत्ते कुटकर सुखा लें। घृत मिलाकर हवन करें, जलती अग्नि में आहुति दें। केवल श्वास रोगी ही दूर से धुआँ ग्रहण करे ।

2. लोभान, बच, पुष्कर (पोहकर) मूल और वासा (अडूसा) पत्र समान भाग कूटकर घृत मिश्रित कर हवन करें ।

11. तक्मा (ज्वर, मलेरिया, फ्लू आदि) रोग नाशक सूक्त

पूर्वकथन :-

1. वेद में ज्वर के लिये तक्मा शब्द आया है, जिसका अर्थ है जीवन को कष्ट या दुःख देने वाला ।
2. अमाशय में स्थित अग्नि की विकृति ही ज्वरोत्पत्ति का कारण है ।
3. वेद में भेदोपभेदपूर्वक 46 प्रकार के तक्मा (ज्वर) बताये गये हैं ।
4. मलेरिया को विश्वशारद ज्वर कहा गया है ।
5. सन्निपात को विषम ज्वर कहा गया है ।
6. संतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक, चातुर्थिक, इन्फ्लूएंजा (फ्लू) आदि विविध ज्वर हैं ।
7. महर्षियों ने औषधि सेवन को जितनी प्रमुखता दी उससे अधिक सार्थक भैषज्य यज्ञों को माना है ।
8. ज्वरः देहेन्द्रियमनस्तापकरः (चरक निदानस्थान 1/31) ज्वररोग देह, इन्द्रियों और मन को पीड़ा देने वाला है ।

ज्वर नाशक सूक्त

अथर्ववेद (01/25)
(ऋषि-भृग्वङ्गिरा। देवता-यक्ष्मनाशन अग्नि। छन्द-1 त्रिष्टुप, 2, 3 विराट्गर्भात्रिष्टुप, 4 पुरोऽनुष्टुप त्रिष्टुप।)

यदग्निरापो अदहत् प्रविश्य यत्रकृण्वन धर्मधृतो नमांसि।
तत्र त आहुः परमं जनित्रं स नः संविद्वान् परि वृङ्धि तक्मन् ।।1।।

जहाँ पर धर्म का आचरण करने वाले सदाचारी मनुष्य नमन करते हैं, जहाँ प्रविष्ट होकर अग्निदेव, प्राण धारण करने वाले जल तत्व को जलाते हैं, वहीं पर आपका (ज्वर का) वास्तविक स्थान है, ऐसा आपके बारे में कहा जाता है । हे कष्टप्रदायक ज्वर! यह सब जानकर आप हमें रोग मुक्त कर दें ।।1।।

यद्यर्चिर्यदि वासि शेचिः शकल्येषि यदि वा ते जनित्रम्।
हुडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ।।2।।

हे जीवन को कष्टमय करने वाले ज्वर! यदि आप दाहकता के गुण से सम्पन्न हैं तथा शरीर को संताप देने वाले हैं, यदि आपका जन्म लकड़ी के टुकड़ों की कामना करने वाले अग्निदेव से हुआ है, तो आप 'ह्रुडु' नाम वाले है ! हे पीलापन उत्पन्न करने वाले ज्वर ! आप अपने कारण अग्निदेव को जानते हुए हमें मुक्त कर दें ।।2।।

{'ह्रुडु' का अर्थ (नाड़ी गति) या कम्पन बढ़ाने वाला अथवा चिन्ता उत्पन्न करने वाला माना जाता है}

यदि शोको यदि वाभिशोको यदि वा राज्ञो वरूणास्यासि पुत्रः।
हुडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ।।3।।

हे जीवन को कष्टमय बनाने वाले ज्वर! यदि आप शरीर में कष्ट देने वाले हैं अथवा सब जगह पीड़ा उत्पन्न करने वाले हैं अथवा दुराचारियों को दण्डित करने वाले वरूण देव के पुत्र हैं, तो भी आपका नाम 'ह्रुडु' है। आप अपने कारण अग्निदेव को जानकर हम सबको मुक्त कर दें ।।3।।

नमः शीताय तक्मने नमो रूराय शोचिषे कृणोमि।
यो अन्येद्युरूभयद्युरभ्येति तृतीयकाय नमो अस्तु तक्मने ।।4।।

ठंडक को पैदा करने वाले शीत ज्वर के लिए हमारा प्रतिकार है और रूखे ताप को उत्पन्न करने वाले ज्वर को हमारा प्रतिकार है । एक दिन का अन्तर लेकर आने वाले, दूसरे दिन आने वाले तथा तीसरे दिन आने वाले शीत ज्वर को हमारा प्रतिकार है ।।4।।

{शीत-ठंड लगकर आने वाले एवं ताप से सुलाने वाले मलेरिया जैसे ज्वर का उल्लेख यहाँ है । यह ज्वर नियमित होने के साथ ही अंतर देकर आने वाले इकतरा-तिजारी आदि रूपों में भी होते हैं। नमन का सीधा अर्थ-दूर से नमस्कार करना-बचाव करना (प्रिवेन्शन) लिया जाता है । 'संस्कृत' शब्दार्थ कौस्तुभ' नामक कोष के अनुसर नमस् के अर्थ नमस्कार, त्याग, वज्र आदि भी हैं। इन ज्वरों के त्याग या उन पर (औषणि या मन्त्र शक्ति से) वज्र प्रहार करने का भाव भी निकलता है ।}

तक्मनाशन सूक्त

अथर्ववेद (05/22)

{ऋषि-भृग्वङ्गिरा । देवता-तक्मनाशन । छन्द-अनुष्टुप। भूरिक् त्रिष्टुप, 2 त्रिष्टुप, 5 विराट पथ्या बृहती ।}

अग्निस्तक्मानमप बाधतामितः सोमो ग्रावा वरूण पूतदक्षाः।
वेदर्बर्हिः समिधः शोशुचानः अप द्वेषांस्यमुया भवन्तु ।।1।।

अग्निवेद, सोमदेव, ग्रावा, मेघ के देवता इन्द्रदेव, पवित्र बल सम्पन्न वरूणदेव, वेदी, कुशा तथा प्रज्वलित समिधाएँ ज्वर आदि रोगों को दूर करें और हमारे शत्रु यहाँ से दूर चले जाएँ ।।1।।

अयं यो विश्वान् हरितान् कृणोष्युच्छोयन्नग्निरि वाभिदुन्वन।
अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया अधा न्य ङ्ङधराङ् वा परेहि ।।2।।

हे जीवन को दुःखमय बनाने वाले ज्वर! आप जो समस्त मनुष्यों को निस्तेज बनाते हैं और अग्नि के समान संतप्त करते हुए उन्हें कष्ट प्रदान करते हैं, अतः आप नीरस (निर्बल) हो जाएं और नीचे के स्थान से दूर चले जाएं ।।2।।

{ज्वर को नीचे के भागों से जाने को कहा है। ज्वर के विकार, मल निष्कासक मार्गों से निकलें यह भाव युक्तिसंगत है ।}

यः परूषः पारूषेयो ऽवध्वंस इवारूणः।
तक्मानं वि वधावीर्याधराञ्च परा सुव ।।3।।

जो अन्यन्त कठोर है और कठोरता के कारण नीचे गिरने वाले राक्षसादि के समान लाल (खूनी) रंग वाला है, हे सब प्रकार के सामर्थ्य वाले ! ऐसे ज्वर को आप अधोमुखी करके दूर करें ।।3।।

अधराञ्चं प्र हिणोमि नमः कृत्वा तक्मने ।
शकम्भरस्य मुष्टिहा पुनरेतु महावृषान् ।।4।।

हम ज्वर को प्रतिकार करके नीचे उतार देते हैं। शाक खाने वाले मनुष्यों को मुक्के से विनष्ट होने वाला यह रोग, अत्यधिक वर्षा वाले देशों में बारम्बार आ जाता है ।।4।।

{यह ज्वर वर्तमान मलेरिया की प्रकृति का लगता है, जो अधिक वर्षा वाले क्षेत्र में विशेष रूप से होता है। अन्न छोड़कर शाकाहार पर रहने से यह शीघ्र दूर होता है, इसलिए इसे शाकाहारी के मुक्के से नष्ट होने वाला कहा गया है।}

ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषा।
यावज्जातस्तक्मस्तावानसि बल्हिकेषु न्योचरः ।।5।।

इस ज्वर का निवास 'मुंज' नामक घास वाला स्थान है और इसका घर महावृष्टि वाला स्थान है। हे ज्वर! जब से आप उत्पन्न हुए हैं, तब से आप 'बाल्हीकों' (हिंसकों) में दृष्टिगोचर होते हैं ।।5।।

तक्मन व्याल वगिद व्यंङ्ग भूरि यावय।
दासीं निष्टक्वरीमिच्छ तां वज्रेण समर्पय ।।6।।

हे सर्प सदृश जीवन को दुःखमय बनाने वाले तथा विरूप अंग करने वाले ज्वर । आप विशिष्ट रोग हैं । अतः आप हमसे अत्यन्त दूर चले जाएँ और निकृष्टता (मलीनता) में निवास करने वालों पर अपना वज्र चलाएँ ।।6।।

{इस ज्वर को विषैला तथा विद्रूप करने वाला कहा गया है। ऐसे ज्वरों को वैद्यक में व्याल और व्यंग कहा जाता है। यह मलीनता में रहने वालों को ही सताता है । दासी शब्द काकजंघा औषधि के लिए है, जिसे ज्वर नाशक कहा गया है}

तक्मन् मूजवते गच्छ बल्हिकान् वा परस्तराम्।
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं१ तां तक्मन् वीव धूनुहि ।।7।।

हे जीवन को कष्टमय बनाने वाले ज्वर ! आप 'मुंज' वाले स्थान अथवा उससे भी दूर के 'बाल्हीक' देशों में जाने की अभिलाषा करें । हे तक्मन्! आप पहली अवस्था वाली शूद्रा (अवसादग्रस्त) की कामना करें और उसे विशेष रूप से कंपा दें ।।7।।

{शूद्रा शब्द प्रियंगुलता औषधि के लिये भी प्रयुक्त है ।}

महावृषान् मूजवतो बन्ध्वद्धि परेत्य ।
प्रैतानि तक्मने ब्रूमो अन्यक्षेत्राणि वा इमा ।।8।।

आप मूंज वाले तथा महावृष्टि वाले प्रदेशों में गमन करें और वहाँ पर बांधने वालों (अवरोध उत्पन्नकर्ताओं) का भक्षण करें । इन सब (अवांछनीय व्यक्तियों) अथवा अन्य क्षेत्रों को हम ज्वर के लिए कहते (प्रेरित करते) हैं ।।8।।

अन्य क्षेत्रे न रमसे वशी सन् मृडयासि नः।
अभूद् प्रार्थस्तक्मा स गमिष्यति बल्हिकान् ।।9।।

आप अन्य क्षेत्रों में नहीं रमते हैं । आप हमारे वशीभूत रहकर हमे सुख प्रदान करते हैं । यह ज्वर प्रबल हो गया है, अब वह 'बाल्हिके' (हिंसकों) के पास जाएगा ।।9।।

यत् त्वं शीताऽधो रूरः सह कासावेपयः।
भीमास्ते तक्मन् हेतयस्ताभिः स्म परि वृङग्धि नः ।।10।।

आप जो शीत के साथ आने वाले हैं अथवा सर्दी के बाद आने वाले हैं अथवा खाँसी के साथ कँपाने वाले हैं । हे ज्वर ! यही आपके भयंकर हथियार हैं, उनसे आप हमें मुक्त करें ।।10।।

मास्मैतान्त्सखीन् कुरूथा बलासं कासमुद्युगम्।
मा स्मातोऽर्वाङैः पुनस्तत् त्वा तक्मन्नुप ब्रुवे ।।11।।

हे ज्वर ! आप कफ, खांसी तथा क्षय आदि रोगों को अपना मित्र न बनाएं और उस स्थान से हमारे समीप न आएं । हे ज्वर ! इस बात को हम आपसे पुनः कहते हैं ।।11।।

तक्मन् भ्रात्र बलासेन स्वस्रा कासिकया सह।
पाप्मा भ्रातृव्येण सह गच्छामुमरणं जनम् ।।12।।

हे ज्वर ! आप अपने भाई कफ, बहिन खांसी तथा भतीजे पाप (दुष्कर्म) के साथ मलीन मनुष्यों के समीप गमन करें ।।12।।

तृतीयकं वितृतीयं सदन्दितमुत शारदम्।
तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम् ।।13।।

(हे देव) ! आप तीसरे दिन आने वाले (तिजारी), तीन दिन छोड़कर आने वाले (चौथिया), सदैव रहने वाले, पीड़ा देने वाले तथा शरद् ऋतु, वर्षा ऋतु और ग्रीष्म ऋतु में होने वाले ज्वरों तथा ठण्डी लाने वाले ज्वरों को विनष्ट करें ।।13।।

गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः।
प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परि दद्मसि ।।14।।

जिस प्रकार भेजे जाने वाले खजाने की सुरक्षा करने वाले मनुष्य गांधार, मूँजवान्, अंग तथा मगध देशों में भेजे जाते हैं, उसी प्रकार इस कष्टदायक रोग को हम (दूर) भेजते हैं ।।14।।

{इस मन्त्र में गन्धारि, मूजवान्, अंग और मगध शब्द ज्वर नाशक औषधियों के वाचक है जो क्रमशः गन्धपलाशी (कचूर), सोम, बोल, (मुरमकी गंधरस) तथा पिप्पली औषधियों के लिये है, जो ज्वर नाशक है ।}

ज्वर एवं मलेरिया नाशिनी धूप

(ज्वर नाशक मन्त्रों से आहुति दें)

1. गूग्गल, लोहबान, कपूर, हल्दी, दारूहल्दी, अगर, वायविडंग, बालछड़ (जटामांसी), बच, कूठ, अजवाईन और नीम के पत्ते-समान भाग कूट पीसकर गाय का घी मिलाकर हवन करें अथवा अंगारे पर धूनि दें ।

2. विषम ज्वर नाशक सामग्री :-

1. गूग्गल-50 ग्राम	2. छोटी हरड़-25 ग्राम
3. कूठ - 25 ग्राम	4. बच-25 ग्राम
5. जौ-25 ग्राम	6. सफेद सरसों-25 ग्राम
7. नीम के पत्ते-25 ग्राम	8. कपूर 10 ग्राम पीसकर मिलावें और

9. गाय का घी-50 ग्राम डालकर, ढाक (पलाश), पीपल अथवा बेर की समिधा अन्यत्र जलाकर धुआँ एवं ज्वाला रहित कर अंगारे पर धूनि दें ।
टीपः- (क) रोगी को छेदवाली चारपाई पर बैठा या सुला दें और कण्ठ तक कपड़ा (चादर) ढक दें, मुंह खुला रहे । रोगी को पसीना आने दें ।
(ख) मलेरिया तथा फ्लू को भी समूल नष्ट करने में समर्थ है ।

3. सामान्य मलेरिया नाशक धूप :-
बच और हरड़ समान भाग लेकर चूर्ण करे, उसमें गौधृत मिलाकर समिधा अथवा कण्डे की आग पर धूनि दें ।

4. जायफल चूर्ण में थोड़ा सा कपूर एवं गौधृत मिलाकर आग पर धूनि दें विषम ज्वर में लाभकारी है ।

5. मसूरातुषकैर्धूपः सर्वज्वर गदापहः (बृहद्रत्नाकर) छिलका सहित मसूर की धूप सब प्रकार के ज्वरों को नष्ट करने वाली है ।

6. बच, कूठ, कुटकी, सहदेयी, गिलोय, गठिवन, लाई (लाजा) और हरड़ समान भाग चूर्ण से ज्वालाग्नि पर हवन करें तो शीतज्वर (ठंड लगकर आने वाले बुखार) में लाभ होता है ।

7. सन्धिगत ज्वर नाशिनी धूनी :-
निर्गुण्डी (संभालू) के पत्ते, गूग्गल, सफेद सरसों, नीम के पत्ते और राल-समान भाग पूर्ण में गौधृत मिलाकर अंगारे पर धूनि दें ।

8. सभी प्रकार के ज्वर नाशिनी धूनी सामग्री

(1) गूग्गल-50 ग्राम	(2) गिलोय - 50 ग्राम
(3) चिरायता-50 ग्राम	(4) जायफल-50 ग्राम
(5) तुलसीपत्र-50 ग्राम	(6) अतीस 50 ग्राम
(7) शक्कर - 100 ग्राम	(8) ब्राह्मी - 10 ग्राम
(9) शालिपर्णी-10 ग्राम	(10) पाण्ढरी-10 ग्राम
(11) क्षीरकाकोली-10 ग्राम	(12) गुलाब पुष्प-10 ग्राम
(13) मकोय-10 ग्राम	(14) मुलहठी-10 ग्राम
(15) लौंग -10 ग्राम	(16) कपूर -10 ग्राम
(17) हाउबेर-10 ग्राम	(18) ऊद-10 ग्राम
(19) अस्पंद -10 ग्राम	(20) सुगंध कोकिला -10 ग्राम
(21) अकरकरा-10 ग्राम	(22) सिहोड़े की छाल-10 ग्राम
(23) कुल्धी-10 ग्राम	(24) शिव लिंगी बीज-10 ग्राम ।

सबको कूटकर चूर्ण करें और गौधृत 100 ग्राम मिलाकर रख लें, थोड़ी थोड़ी मात्रा अंगारे पर धूनी दें ।

{सभी प्रकार के तक्म रोगों पर प्रभावकारी है।}

12. वातव्याधि निवारक सूक्त

(क्षेपक, गृध्रसि, अर्दित, पक्षाघात, सन्धिवात)

पूर्वकथन :-

1. वातव्याधि के अन्तर्गत निम्न रोग लिये गये हैं :-

(I) क्षेपक - (क) अंगों का निरन्तर हिलना, कम्पन आदि ।

(ख) धनुर्वात धनुष्टंकार को भी इसी के अन्तर्गत क्षिप्त रोग कहा गया है ।

(II) गृध्रसी - गठिया वात रोग ।

(III) अर्दित - अत्यन्त नष्ट अंग अथवा चिरस्थायी शूल आमवात ।

(IV) पक्षाघातः एक पक्ष में आघात (सुन्न होना), लकवा रोग ।

(V) सन्धिवातः जोड़ों मे दर्द ।

2. अथर्ववेद काण्ड 02 सूक्त 09 तथा काण्ड 06 सूक्त 109 में वातव्याधि की चिकित्सा का वर्णन है।

3. उक्त सूक्तों में दशवृक्ष (दशमूल) तथा पिप्पली औषधियों को वातनाशक कहा गया है ।

4. वातव्याधि की चिकित्सा 'विषाणका' अर्थात् अजश्रृंगी (मेष या मेढ़ासिंगी) औषधि द्वारा करने का वर्णन-अथर्ववेद 06 / 44 में दिया है ।

अथर्ववेद काण्ड 06 सूक्त 109 में क्षेपक वात आदि की चिकित्सा उल्लिखित है :-

पिप्पली क्षिप्तभेषज्यू३ताविद्धभेषजी।
तां देवाः समकल्पयन्नियं जीवितवा अलम् ।।1।।

पिप्पली औषधि क्षिप्तवातःक्षेपकवातव्याधि अर्थात् अंगों को फैंकने, अस्थिर करने, कम्पाने वाले रोग को नष्ट करने वाली है तथा अतिविद्ध अर्थात् अत्यन्तविद्ध गृध्रसी या अत्यन्त नष्टांङ्ग वाली पक्षाघात तथा अर्दित वातव्याधि को नष्ट करने वाली है। उस इस पिप्पली औषधि को विद्वान् वैद्यजन पाकयोग से तैयार करते हैं । यह जीवन देने के लिए समर्थ है ।।1।।

पिप्पल्यः समवदन्तायतीर्जननादधि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरूषः ।।2।।

पिप्पलियां अपने उत्पन्न स्थान से आती हुई मानो परस्पर कहती हैं कि जिस जीव को व्याप्त करती हैं - उसके शरीर में समाती हैं वह मनुष्य हिंसित नही हो सकता ।।2।।

असुरास्त्वा न्यखनन् देवास्त्वोदपन् पुनः।
वातीकृतस्य भेषजीमधो क्षिप्तस्य भेषजीम् ।।3।।

शरीर में वात करने वाले रोग की नाशिका और क्षिप्तवात-क्षेपकवात रोग की निवारिका तुझ पिप्पली औषधि को मेघ बीज शक्ति के रूप में बोते हैं। पश्चात् सूर्य किरणें तुझे उगाती हैं ।।3।।

गृध्रसी, सन्धिवात की चिकित्सा -

अथर्ववेद काण्ड 02 सूक्त 09 में ''दशवृक्ष'' द्वारा सन्धिवात, गृध्रसी वातरोग की चिकित्सा का वर्णन है ''दश वृक्ष'' से तात्पर्य ''दशमूल'' हैं ।

दश वृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि यैनं जग्राह पर्वसु ।
अथो एनं वनस्पते जीवानं लोकमुन्नय ।।1।।

हे दशमूल! इस रोगी को जिससे रक्षण करना चाहिए ऐसे वातरोग की पकड़ से छुड़ा जो कि इस मनुष्य को जोड़ों में पकड़ती है। हे औषधि! पुनः इस को जीवितों के संघ में उन्नत कर ।।1।।

आगादुदगादयं जीवानां व्रातमप्यगात्।
अभूद् पुत्राणां पिता नृणां च भगवत्तमः ।।2।।

मनुष्य दशमूल के सेवन द्वारा वातव्याधि के बन्धनों से छूट जाता है, उन्नत हो जाता है। जीवों के समूह में, मनुष्यों के संघ (समाज) में, परिवार में प्राप्त हो जाता है। पुत्रों का पिता और पौत्र आदि के मध्य अत्यन्त भाग्यवान हुआ विराजता है ।।2।।

अधीतीरध्यगादयमधि जीवपुरा अगन् ।
शतं ह्यस्य भिषजः सहस्रमुत वीरूधः ।।3।।

यह मष्तिष्क में स्मर्तव्य बातों को स्मरण करता है और जीवों को पूरण करने वाली, (तृप्त करने वाली) इन्द्रियों को (इन्द्रियशक्तियों को) प्राप्त

हो जाता है क्योंकि इसके सैकड़ों ही चिकित्सक हैं तथा औषधियाँ सहस्रों हैं ।।3।।

देवास्ते चीतिमविदन् ब्राह्माण उत वीरूधः।
चीतिं ते विश्वे देवा अविदन् भूम्यामधि ।।4।।

देव, चिकित्सक तथा औषधियाँ तेरे लिये संवरण-स्वास्थ्य को प्राप्त करते हैं। समस्त देव भूमि पर (पृथिवी लोक पर) तेरे लिये अनुकूलता को प्राप्त करते हैं ।।4।।

यश्चकार स निष्करत् स एव सुभिषक्तमः ।
स एव तुभ्यं भेषजानि कृणवद् भिषजा शुचिः ।।5।।

जो तेरे शरीर का निर्माण करता है, वह स्वस्थ करता है क्योंकि वह ही श्रेष्ठ चिकित्सक है। वह ही तेरे लिये शुद्ध निर्दोष परमेश्वर, अन्य चिकित्सक के द्वारा औषधोपचार सम्पादन करता है ।।5।।

{इस सूक्त में सन्धिवात, मष्तिष्कवात (अपस्मार) जैसे वातरोग की चिकित्सा 'दशवृक्ष' अर्थात् दशमूल से करने का विधान है । बिल्व, अग्निमन्थ, श्योनाक, काश्मरी, पाटला, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, गोखरू ये दश औषधियां दशमूल हैं। यह गण वातनाशक है **''प्रायस्त्रिदोषशमनं पवनामयेषु श्लेष्मोल्वणेषु च गदेषु भिषग्भिरूक्तम्''** (धनवन्तरि नि.) एवं 'दशमूल' को क्वाथ वात कुण्डलि, अष्ठीला और वातवस्ति को नष्ट करता है। **''दशमूलीक्वाथं पीत्वा सशिलाजतुशर्करम्। वातकुण्डलिकाष्ठीलावातवस्तौ प्रयुज्यते''** (भैषज्य रत्नावली) 'दशमूल' को वेद ने अपस्मार नाशक बतलाया है इसी प्रकार आयुर्वेदिक शास्त्र में भी इसे अपस्मार नाशक कहा है ''द्वे पंचमूले त्रिफला... अपस्मारे तथोन्मादे.....'' (चरक । अपस्मार चि.अ. 10) अस्तु ।।

वातव्याधिनाशक धूप

१. अमलताश के सूखे पत्तों को कूटकर सरसों तेल से गूंथकर अंगारे पर धूनि दें तो आमवात ठीक होता है ।

2. हर्रे (हरड़) के बक्कल को कूटकर एरण्ड तेल से गूंथकर अंगारे पर धूनि दें तो वातव्याधि में लाभ होता है ।
3. छोटी कटेरीफल, सहजने की जड़, बांबी मिट्टी और गुड़ समान भाग कूट पीसकर धूनि दें।
4. भांग और तम्बाखू के पत्ते समान भाग लेकर कूट लें, इससे हवन करें तथा धूनि लें तो धनुर्वात में शीघ्र लाभ होता है।
5. अजश्रृंगी (मेढ़ाश्रृंगी) को कूट पीसकर गौधृत मिलाकर अंगारे पर धूनि दें ।

यः समिधा य आहूती यो वेदेन ददाश मर्तो अग्नये ।
न तमंहो देवकृतं कुतश्चन न मर्त्यकृतंनशत्...॥

ऋग्वेद (८-१९-५/६)

जो मनुष्य समिधां, आहुति एवं वेदमन्त्रों से अग्नि में यज्ञ करता है, उसे मनुष्यकृत पाप या बुराईयाँ तथा बिगड़ी हुई प्राकृतिक शक्तियाँ नहीं सताती ।

13. बवासीर (अर्श), भगन्दर रोग निवारक सूक्त

पूर्वकथन :-

1. अथर्ववेद काण्ड 02 सूक्त 25 के पांच मन्त्रों तथा अथर्ववेद काण्ड 04 सूक्त 17 के पांचवे मन्त्र को बवासीर रोग निवारक कहे गये हैं।
2. इन सूक्तों में बवासीर को दुर्णाम, दुर्णामा, दुर्णामी एवं दुर्वाच नाम से कहा है।
3. उक्त मन्त्रों में पृश्निपर्णी तथा अपामार्ग को बवासीर नाशक कहा है।
4. आयुर्वेदज्ञों के अनुसार अपामार्ग (चिड़चिड़ा) के बीजों को पिसी कल्क चावलों के जल के साथ पीने से रक्त आने वाली बवासीर नष्ट होती है।
5. गर्भह्रास चिकित्सा प्रकरण में भी यह सूक्त 02/25 उल्लिखित हैं।

अथर्ववेद (02/25)

शं नो देवी पृश्निपर्ण्यशं निर्ऋत्या अकः ।
उग्रा हि कणवजम्भनी तामभक्षि सहस्वतीम् ।।1।।

पृश्निपर्णी औषधि देवी हमारे लिये सुख-स्वास्थ्य देती है। रोगोत्पत्ति के लिये प्रतिकूलता करती है। वह अवश्य तीक्ष्ण गुहारोग कृमि को नष्ट करने वाली है उस रोगी का तिरस्कार करने वाली औषधि को मैं सेवन करता हूँ।।1।।

सहमानेयं प्रथमा पृश्निपर्ण्यजायत ।
तयाहं दुर्णाम्नां शिरो वृश्चामि शकुनेरिव ।।2।।

यह पृश्निपर्णी औषधि रोगो का तिरस्कार करने वाली मुख्य उत्पन्न हुई है उससे मैं दुर्णामा कृमियों के सिर को पक्षी के सिर की भांति छेदन करता हूँ।।2।।

अरायमसृक्पावानं यश्च स्फातिं जिहीर्षति ।
गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च ।।3।।

क्षीणता लाने वाले, रूधिर पीने वाले कृमि को और जो शरीर वृद्धि को

हरना चाहता है, उस ऐसे गर्भ खाने वाले निमीलन जैसे चबक चबक करने वाले कृमि को या कृमिभूत रोग को हे पृश्निपर्णी औषधि! तू नष्ट कर और अपना प्रभाव जमा।।3।।

गिरिमेनाँ आवेशय कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तास्त्वं देवि पृश्निपर्ण्यग्निरिवानुदहन्निहि ।।4।।

हे पृश्निपर्णी औषधि देवी ! तू इन जीवित गर्भ को नष्ट करने वाले कृमियों-कृमि-भूत रोगों को पर्वत पर पहुँचा दे-ऊँचे उड़ा दे-छिन्न भिन्न करदे उनको अग्नि की भांति जलाती हुई प्राप्त हो।।4।।

पराच एनान् प्रणुद कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तमांसि यत्र गच्छन्ति तत् क्रव्यादो अजीगमम् ।।5।।

इन जीवित घातक कृमियों को दूर भगा जहां अन्धेरे प्राप्त हैं, उस स्थान को उक्त कच्चे मांस के भक्षक कृमियों को मैं पहुँचाता हूँ।।5।।

दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः।
दूर्णाम्नीः सर्वा-दुर्वाचस्ता असमन्नाशयामसि।।
- अथर्ववेद 04/07/05

-नींद में बेचैनी, जीवन के कष्ट, बड़े राक्षस (रोग), दरिद्रता और दुष्ट नाम वाले बवासीर रोग को अपने से हम अपामार्ग औषधि से नष्ट करते हैं।

बवासीर, भगन्दर नाशक धूनी

1. नीम के पत्ते, कूठ, हरड़ और मैनसिल समान भाग चूर्ण में गौधृत एवं शहद मिलाकर अंगारे पर धूनी दें। धुएं को मस्से पर ग्रहण करें।
2. असगन्ध, निर्गुण्डी, बड़ी कटेरी और छोटी पीपल समान भाग लेकर चूर्ण करें घी मिलाकर अंगारे पर धूनी दें, मस्से पर धूनी ग्रहण करें।
3. गोरखमुण्डी को सर्वांग छाया में सुखाकर चूर्ण करें और उससे मस्से पर धुआँ करें।
4. रालचूर्ण को सरसों तेल में मिलाकर धूनी दें।
5. भीमसेनी कपूर की धूनी दी जाए।
6. बरगद के पत्ते, सोंठ, गिलोय और पुनर्नवा को समभाग पीसकर भगन्दर के फोड़े पर धूनी दें।
7. दारू हल्दी को थूहर तथा आक के दूध में खरल करके भगन्दर में धूनि दें।

14. नेत्र रोग निवारक सूक्त

पूर्वकथन :-

1. आंखों में धुंधलापन, जलन, पीड़ा, स्राव और मन्ददृष्टि आदि नेत्ररोग हैं।
2. अथर्ववेद काण्ड 04 सूक्त 20 में नेत्ररोगों से बचने की कामना है।
3. उक्त सूक्त में श्वेत कमल (पुष्प) को नेत्रशक्तिप्रद कहा गया है।

अथर्ववेद (04 / 20)

आ पश्यति प्रतिपश्यति परा पश्यति पश्यति ।
दिवमन्तरिक्षमाद् भूमिं सर्वं तद् देवि पश्यति ।।1।।

हे औषधि देवी! तेरे उपयोग से मनुष्य भली भांति देखता है, पास का देखता है, अणु को देखता है, दूर का देखता है, महान् को देखता है, द्युलोक को, अंतरिक्ष को पुनः भूमि को उस सब को देखता है ।।1।।

तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः षट् चेमाः प्रदिशः पृथक् ।
त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे ।।2।।

हे औषधि देवी! तेरे सेवन से मैं तीनों द्युलोक अर्थात् सूर्य मण्डल, चन्द्रतारा मण्डल, नक्षत्र राशि मण्डल को तथा तीनों पृथिवी अर्थात् ऊंची पर्वत भूमि, मध्य सम भूमि, नीची जलमग्न आदि भूमि को और इन छहों दिशाओं को पृथक-पृथक अर्थात् प्रत्येक दिशा को एवं सब वस्तुओं को देख सकूं ।।2।।

दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका ।
सा भूमिमारूरोहिथ वह्यं श्रान्ता वधूरिव ।।3।।

हे औषधि तू दिव्य सुपर्ण सूर्य की सचमुच नेत्रतारा है। सूर्य के उदय होने पर तू खुलती है-खिलती है उस जैसी चमक और कान्ति भी रखती है एवं तू सूर्यनेत्र नाम वाली अर्थात् श्वेत कमल नाम की है तथा दिव्य सुपर्ण श्वेत कमल की निश्चित् नेत्रतारा केशरमय बिन्दु मण्डल या श्वेत कमल की कली है वह तू थकी वधू जैसे यान 'गाड़ी' पर आरोहण करती है वैसे पृथिवी पर आरोहण कर-भली भांति समृद्ध हो ।।3।।

तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त अदधत् ।
तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उत आर्यः ।।4।।

सहस्र रश्मि वाले सूर्य देव ने मेरे दक्षिण हाथ में-मेरे स्वायत्त में उस कमलनेत्र श्वेतकमल कली कोा धर दिया उससे मै सब देखता हूँ जो भी सब शूद्र अर्थात शीघ्र गति वाला तथा आर्य अर्थात प्राप्त स्थान वाला स्थिर है ।।4।।

आविष्कृणुष्व रूपाणि मान्मानमपगूहथाः ।
अथो सहस्रचक्षो प्रतिपश्याः किमीदिनः ।।5।।

हे सहस्र दर्शन शक्ति की साधिका कमल पुष्प औषधि! तू रूपों को सामने प्रकट कर अपने स्वरूप को-अपने गुण को मत लुप्त कर और यह क्या है जिनमें ऐसी जिज्ञासा हो उन सूक्ष्म वस्तुओं को प्रतिभाषित कर स्पष्ट दिखला ।।5।।

दर्शय मा यातुधानान् यातुधान्यः ।
पिशाचान्त्सर्वान् दर्शयेति त्वारभ औषधे ।।6।।

हे श्वेत कमल फूल औषधि! तू मुझे मार्ग धारण करने वाले ग्रहों को दिखला, मार्गधारण करने वाली किरणधाराओं को दिखला, समस्त पिशित पिष्ट अर्थात् रूप को प्राप्त हुए पदार्थों को दिखला इस हेतु तुझे सेवन करता हूँ ।।6।।

कश्यपस्य चक्षुरसि शून्याश्च चतुरक्ष्याः ।
वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं सा पिशाचं तिरस्करः ।।7।।

हे कमल पुष्प ओषधि ! तू सूर्य का नेत्र है और चार आंखों वाली चारों दिशाओं में चमकने वाली शूनी देवशूनी विद्युत का भी तू नेत्र है। अतः सूर्य के समान आकाश में घूमते हुए रूपवाले उल्का ग्रह तारा आदि को मत छिपा-स्पष्ट दिखला ।।7।।

उदग्रभं परिपाणाद् यातुधानं किमीदिनम् ।
तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम् ।।8।।

यह क्या है ऐसे जिज्ञास्य सूक्ष्म को तथा मार्गधारण करने वाले ग्रह को परिरक्षण साधन से लक्ष्य में कर लूं उससे सब शूद्रावी-दौड़ने वाले तथा स्थिर को भी मै देख सकूं ।।8।।

यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यश्चाति सर्पति।
भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्रदर्शय ।।9।।

जो आकाश से गिरता है और जो द्युलोक में अतिक्रमण गति करता-तुरन्त लम्बा है-सरक जाता है। जो पृथिवी, गोल को नाथ मानता है-अपना स्वामी मानता है-पृथिवी की ओर आकर्षित होता है-पृथिवी को अपेक्षित करके गति करता है उस रूप को प्राप्त हुए उल्का आदि को स्पष्ट दिखा ।।9।।

नेत्र रोग निवारक हवन धूप

1. लाल ईख (गन्ना) को कूटकर अग्नि में डालें और उसका धुआँ आँखों पर लें।

2. मुलहठी, नीलोफर, जीवक और ऋषभक समान भाग लेकर कूट पीस लें उसमें बकरी का घृत मिलावें। आँखों में उसका धुआँ ग्रहण करें।

3. गूग्गल 50 ग्राम, मुहलठी 10 ग्राम, त्रिफला 10 ग्राम, पीपल 10 ग्राम, लौहभस्म 10 ग्राम।

-सबको कूटपीस लें। उसमें शहद 25 ग्राम तथा गौघृत 25 ग्राम मिलाकर धूनी दें।

15. एड्स (ओजक्षय, उरःक्षत) की वैदिक चिकित्सा

पूर्वकथन :-

1. 'एड्स' यह व्याधि सन् 1981 में अमेरिका में देखी गयी। यद्यपि सन् 1960 में चिकित्सा शास्त्रियों का ध्यान इस रोग के प्रति गया।
2. कुछ विशेषज्ञों के अनुसार एड्स फैलाने वाले एच.टी. एल.व्ही. नामक वाईरस लेबोरेटरी में जैविक युद्ध के लिए रासायनिक हथियार (Chemical Weapans) के रूप में बनाया गया तो कुछ विशेषज्ञों के अनुसार अफ्रीका के हरित वानर से मानव में सूक्ष्म जीवाणु प्रविष्ट होकर एड्स फैलाते हैं, वहीं कुछ विशेषज्ञ रोग के प्रचलित इतिहास कोदेखकर कहते हैं कि यह रोग STD (सेक्सुवली ट्रांसमिटेड डिजीजेस) अर्थात रतिरोग के अन्तर्गत कुप्रवृत्तियों से उत्पन्न हुआ है।
3. 'एक्वायर्ड इम्यूनिटी डेफीसेन्सी सिंड्रोम' के प्रथम अक्षरों के आधार पर AIDS (एड्स) नामकरण किया गया है, जिसका अभिप्राय है 'रोग प्रतिरोधक क्षमता की अभावजन्य अवस्था'।
4. इस रोग का उदय-स्थान मानवीय कुप्रवृत्तियाँ हैं। वीर्याणु की दूषितावस्था से शुक्रक्षय को प्रमुखा कारण माना गया है।
5. शुक्रक्षय पर प्रारम्भ हुई क्षयावस्था सर्वप्रथम ओजक्षय का कारण बनती है, जिससे क्रमशः मज्जा, अस्थि, मेद, मांस, रक्त व रस धातुओं को प्रतिलोम क्षय होता है।
6. सप्त धातुओं का सार है ओज। इसकी उत्पत्ति सप्त धातुओं के परिपाक से होती है। आचार्य सायण ने ओज को आठवीं धातु लिखा है -

"ओजः शरीरस्थितिकारणमष्टमोधातुः"

7. ओज की विकार अवस्थाएँ :-
(क) व्यापद अवस्था :- दोषों की दूषितावस्था के साथ होना।
(ख) विस्रत अवस्था :- ओज का अपने स्थान से अन्यत्र कार्य करना।
(ग) क्षयावस्था :- ओज का नगण्य हो जाना।
8. उक्त ओज की विकारावस्था को वैदिक साहित्य में अति स्त्री रमण से उत्पन्न राजयक्ष्मा के अन्तर्गत उरःक्षत रोग कहा गया है।

9. एड्स (ओजक्षय, उरूःक्षत) अर्थात् रोग प्रतिरोधक क्षमता अभाव व चिकित्सा, आयुर्वेद में तीन भागों में बांटी गई है ।
(क) शोधन चिकित्सा - रक्त शुद्धि के लिए सिरावेध द्वारा रक्त मोक्षण करना ।
(ख) संशमन चिकित्सा - विषाणु नाशार्थ संजीवनी हरगौरीरस और त्रिभुवन कीर्तिरस का प्रयोग ।
(ग) धातुपोषण चिकित्सा - ओजवर्धक औषधियों का प्रयोग चरक ने गौदुग्ध को ओजवर्धक बताया है। अतः जीवनीय द्रव्यों से सिद्ध गोदुग्ध का पान महत्वपूर्ण है । यथा - यष्टीमधुचूर्ण, शतावरी चूर्ण, विदारी कन्द का क्षीरपाक ।
10. अथर्ववेद काण्ड 07 सूक्त 76 में उरःक्षत या ओजक्षय के निवारण की कामनाएँ हैं, जिसमें अति स्त्री प्रसंग रूप व्यभिचार को धिक्कारा गया है तथा आत्मबल बढ़ाकर संयमव्रत धारण का उपदेश है। पांचवे मंत्र में होम (हवन) करना एवं छठवें मन्त्र में सोमरस का पान करना महौषध रूप से उल्लिखित है ।
उक्त सूक्त का देवता 'वैद्य' है अर्थात् चिकित्सक का कथन है :-

आ सुस्रसः सुस्रसो असतीभ्यो असत्तराः ।
सेहोररसतरा लवणाद् विक्लेदीयसीः ।।1।।

सब ओर से बहुत बहने वाले पदार्थ से बहुत बहने वाली और बहुत बड़ी पीड़ाओं से, अधिक बुरी नीरसता से तथा नमक से अधिक गल जाने वाली रोग को नष्ट कर दिया है ।।1।।

या गैव्या अपचितोऽथो या उपपक्ष्याः ।
विजाग्नि या अपचितः स्वयं स्त्रसः ।।2।।

जो गले में, कंधे के जोड़ो पर रोग है और जो अपने आप बहने वाली फुंसियां गुह्य स्थान पर हैं उनको नष्ट कर दिया है ।।2।।

यः कीकसाः प्रशृणाति तुलीद्यमवतिष्ठति ।
निर्हास्तं सर्वं जायान्यं यः कश्चककूदिश्रितः ।।3।।

जो रोग हंसली की हड्डियों को तोड़ देता है, फेफड़े में बैठ जाता है और जो शिर में ठहरा हुआ है उस सब जाया अर्थात् स्त्री में अतिभोग करने से होने वाले रोग को दूर करें ।।3।।

पक्षी जायान्यः पतति स आ विशति पुरूषम् ।
तदक्षितस्य भेषजमुभयोः सुक्षतस्य च ।।4।।

वह अति स्त्री प्रसंग से उत्पन्न होने वाला पार्श्वभागों में होने वाला पक्षी की भांति गुह्यस्थान में गिरता है, वह पुरूष में प्रवेश कर जाता है, वह भीतर व्यापे हुए और गहरे घाव वाले रोगों को भेषज आगे कहा जाने वाला है ।।4।।

विद्म वै ते जायान्य जातं यतो जायान्य जायसे ।
कथं ह तत्र त्वं हनोयस्य कृण्मो हविगृहे ।।5।।

अति स्त्री प्रसंग से होने वाले हे उरःक्षत रोग! तेरे जन्म को अवश्य हम जानते है। हे जायान्य रोग! तू जैसे ही उत्पन्न होता है वैसे ही तुरन्त जिसके घर में होम करते हैं, वहाँ तू कैसे मार सकता है ?

धृषत् पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहाशूर समेर वसूनाम् ।
माध्यन्दिने सवन आवृषस्य रयिष्ठानो रयिमस्मासु धेहि ।।6।।

हे गृहस्थ मनुष्य! तू प्राणें के संग्राम में विघ्नों को हटाने वाला शूरवीर है, रोगों को नष्ट करने हेतु कलश में स्थिति सोमरस को पी। पुनः युवावस्था रूप सवन में पराक्रम का सम्पादन कर और ऐश्वर्यमुक्त होकर हम ऋत्विजों में ऐश्वर्य कोा धारण करा ।।6।।

एड्स निवारक हवन सामग्री

1. पीछे लीखी सर्वरोगनिवारक सामग्री का प्रयोग महत्वपूर्ण है ।
2. अथवा स्त्रीरोग निवारक हवन सामग्री के अन्तर्गत गर्भाशय केन्सर अथवा प्रदर-नाशक धूप का प्रयोग कर सकते हैं ।
3. अथवा क्षय रोग नाशक हवि का प्रयोग किया जा सकता है ।
4. अथवा सफेद मूसली, तालमखाना, बड़ा गोखरू, बबूल के बीज, कौंच बीज, शतावरी, इलायची और सुपारी-समान भाग लेकर कूट लें, इसे घृतयुक्त करके हवन करें ।
5. अथवा गूग्गल, अश्वगंध, गोखरू, कौंच के बीज, त्रिफला और देशी खाण्ड-समभाग का चूर्ण घृत मिला लें । ढाक (पलाश) की समिधाओं में अग्नि जलाकर उसमें हवन करें ।
6. छोटी कटेरी और बड़ी कटेरी दोनों का पंचांग उखाड़ लावें और समान भाग मिश्रित कूट लें, उसमें घी मिलाकर हवन करें।

16. मृत्युञ्जय सूक्त

पूर्वकथन :-

1. अथर्ववेद काण्ड 04 सूक्त 35 को मृत्युधजय या मृत्युसंतरण सूक्त कहा गया है।
2. अथर्ववेद संहिता में उक्त सूक्त का देवता ''अतिमृत्यु'' है, किन्तु भाषा भाष्य में भाष्यकार क्षेमकरण दास त्रिवेदी ने देवता ''आवेद'' लिखा हैं।
3. सात मंत्रों वाले सूक्त के छः मंत्रों के अंतिम चरण में आया है 'तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्' मिसका अर्थ है उस ओदन के द्वारा हम मृत्यु को लांघते हैं।
4. ओदन शब्द विचारणीय है :-
i) सातवें मंत्र में ब्रह्म को ओदन स्पष्टतः कहा है :- ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि...।
=सबको विजित करने वाले ब्रह्मस्वरूप ओदन पकाते हैं।
भाषा भाष्यकार ने अर्थ किया है :- सबको बढ़ाने वाले वा अन्नरूप परमात्मा।
ii) अथर्ववेद के चौंतीसवे सूक्त, प्रथम मंत्र में यज्ञमय प्रजापति का एक नाम ओदन कहा है।
शतपथ ब्राह्मण 1 3 10 3 10 9 10 7 में भी यही कहा है।
''प्रजापतिर्वा ओदनः''
iii) ऋग्वेद 08/77/06 में ओदन का अर्थ जलप्रदाता मेघ किया गया है। निरूक्त में आचार्य दुर्ग ने भी ओदन का अर्थ मेघ किया है।
iv) ऋग्वेद 08/77/10 में 'क्षीरपाकमोदनम्' अर्थात दूध में पकाए चावल (खीर) को ओदन कहा गया है।
v) ऋग्वेद 08/69/14 में ओदन का अर्थ भात (पका हुआ चावल) किया गया है।
vi) अथर्ववेद 12/03/05 में ओदन को रेतस् तत्व अर्थात वीर्य कहा गया है।
5. इस सूक्त को मृत्यु परविजय पाने की कामना से पाठ (जप) कर सकते हैं अथवा यज्ञ में स्वाहाकार प्रयोग कर सकते है।

मृत्युसंतरण सूक्त

{ऋषि-प्रजापति । दवेता-अतिमृत्यु । छन्द-त्रिष्टुप, ३ भूरिक् त्रिष्टुप, ४ जगती ।}

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत् ।
यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात् तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम ।।1।।

जिस ओदन को सर्वप्रथम उत्पन्न प्रजापति ने तपस्या के द्वारा अपने कारण ब्रह्म के लिए बनाया था, जिस प्रकार नाभि समस्त जीवों को विशेष रूप से धारण करने वाली है। उसी प्रकार वह ओदन पृथ्वी आदि को धारण करने वाला है। उस ओदन के द्वारा हम मृत्यु को लाँघते हैं ।।1।।

येनातरन भूतकृतोऽति मृत्युं यमन्वविन्दन तपसा श्रमेण ।
यं पपाच ब्रह्मणे बह्म पूर्व तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ।।2।।

जिस अन्न को तपश्चर्या द्वारा भूतों के सृष्टिकर्ता देवताओं ने प्राप्त किया है जिसके द्वारा वे मृत्यु का अतिक्रमण कर गये तथा जिसको 'ब्रह्म' ने ब्रह्म (वेदज्ञानी) के लिए पहले ही पकाया; उस अन्न के द्वारा हम मृत्यु को लाँघते हैं ।।2।।

यो दाधार पृथिवी विश्वश्रससेजयं यो अन्तक्षिमापृणद् रसेन ।
यो अस्तभ्नाद् दिवमूर्ध्वो महिम्ना तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ।।3।।

जो ओदन समस्त प्राणियों को भेजन प्रदान करने वाली पथ्वी को धारण करता है, जो ओदन अपने रस के द्वारा अन्तरिक्ष को परिपूर्ण करता है तथा जो ओदन अपने माहात्म्य के द्वारा द्युलोक को ऊपर ही धारण किये रहता है, उस ओदन के द्वारा हम मृत्यु का अतिक्रमण करते हैं ।।3।।

यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिशदराः संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः ।
अहोरात्रै यं परियन्तो नापुस्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ।।4।।

जिस ब्रह्म सम्बन्धी ओदन से बाहर महीने उत्पन्न हुए हैं, जिससे रथचक्र के 'अरे' रूप तीस दिन उत्पन्न हुए हैं, जिससे बारह महीने वाले

संवत्सर उत्पन्न हुए हैं तथा जिस ओदन को व्यतीत होते हुए दिन और रात प्राप्त नहीं कर सकते, उस आदेन के द्वारा हम मृत्यु का उल्लंघन करते हैं ।।4।।
{दिन रात नही पा सकते का भाव है परमात्मा अनादि अनन्त होने से काल के अधिकार से बाहर है ।}

**यः प्राणदः प्राणदवान् बभूव यस्मै लोका घृतवन्त क्षरन्तिः ।
ज्योतीष्मतीः प्रदिशो यस्य सर्वास्तेनौदनेनाति तराणि
मृत्युम् ।।5।।**

जो ओदन मरणासन्नों को प्राण प्रदान करने वाला होता है, जिसके लिए समस्त जगत् घृत-धाराओं को प्रवाहित करता है तथा जिसके ओजस् से समस्त दिशाएँ ओजस्वी बनती हैं, उस ओदन के द्वारा हम मृत्यु का अतिक्रमण करते हैं ।।5।।

**यस्मात् पक्वादमृतं सम्बभूव यो गाय या अधिपतिर्बभूव।
यस्मिन् वेदा निहता वि वरूपास्तेनौदनेनाति तराणि
मृत्युम् ।।6।।**

जिस पके हुए ओदन से द्युलोक में स्थित अमृत उत्पन्न हुआ, जो गायत्री छन्द का देवता हुआ तथा जिसमें समस्त प्रकार के ॠक, यजु, साम, आदि वेद निहित हैं, उस ओदन के द्वारा हम मृत्यु का उल्लंघन करते हैं ।।6।।

**अव बाधे द्विषन्तं द्विषन्तं देवषीयुं सपत्ना मेऽप ते भवन्तु ।
ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि शृण्वन्तु में श्रद्दधानस्य देवाः।।7।।**

विद्वेष करने वाले रिपुओं तथा देवत्व-हिंसकों के कार्य में हम बाधा डालते हैं । हमारे शत्रु विनष्ट हो जाएँ, इसीलिए सबको विजित करने वाले ब्रह्मरूप ओदन पकाते हैं। अतः समस्त देवता हमारी पुकार को सुनें ।।7।।

17. अमावस्या (दर्श) एवं पौर्णमासीसूक्त

(दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामोयजेत्)

पूर्वकथन :-

1. सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च (यजुर्वेद 13/46) । = चेतन और जड़ जगत् का सदा गमनशील (आत्मा) है सूर्य।
2. सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः (यजुर्वेद 23/10) = सूर्य बिना ासहायता के अपनी कक्षा में चलता है फिर इसी सूर्य के प्रकाश से चन्द्र लोक प्रकाशित होता है ।
3. सूर्य से अहोरात्र अर्थात दिन और रात्रिरूप में काल का विभाग होता है ।
4. रात्रि दो रूपों वाली होती है अर्थात् प्रकाशएवं अंधकार रूपवती ।
5. यह रूप पन्द्रह-पन्द्रह दिनों (पाक्षिक) में बदलता रहता है, जिसे शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष कहते हैं ।
6. शुक्ल पक्ष में सूर्यास्त के पश्चात् प्रकाश की मात्रा एवं समय क्रमशः बढ़ता जाता है और पौर्णमासी की रात में पूर्ण चन्द्रमा का प्रकाश पूरी रात रहता है ।
7. कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा का उदय क्रमशः दो-दो घड़ी (48 मिनट) देर से होता हैं ।
8. प्रकाश की कलाएँ शनैः शनैः लुप्त होने से अन्धकार की मात्रा बढ़ते-बढ़ते अमावास्या की रात्रि में पूरा अन्धकार होता है ।
9. पौर्णमासी के दो भेद हैं - अनुमति तथा राका ।

ऐतरेय ब्राह्मण 07/02/10 के अनुसार पौर्णमासी का प्रथम भाग अनुमति और अंतिम भाग राका है ।

10. चतुर्दशी का अंतिम (आठवां) प्रहर (3 घण्टे का) और पूर्णिमा के आठ प्रहर (24 घण्टे) - कुल 9 प्रहर (27 घण्टे) ही चन्द्रमा की पूर्णकला है । इनमें प्रारंभक दो प्रहर, जिनमें कला पूर्ण होती है उसको अनुमति कहते हैं तथा शेष 7 प्रहर राका कहलाती है ।

11. अनुमति तथा राका शब्दों का विशेष अभिप्राय :-

1. अनुमानतः अनुमतिः= अनुमान से अनुमति है या अनुकूल गति अर्थात् एक दूसरे के अनुकूल हित-साधन की मति अनुमति है अथवा अभिलाषा के अनुकूल हित करने वाली अनुमति है ।

2. राका- 'राति ददाति आस्मिन् हविः अग्नौ ऋत्विक् इति राका'

=ऋत्विक इस दिन अग्नि में हवि देते हैं अतएव यह राका है ।

12. 'हविर्दान निमित्तं हि सा भवति'

=पूर्णिमा हर्विदान (यज्ञ) के लिए होती है ।

13. अथर्ववेद काण्ड 07 सूक्त 20 के छः मन्त्र अनुमति देवता वाले हैं ।

अथर्ववेद काण्ड 07 सूक्त 48 के दो मन्त्र राका देवता वाले हैं ।

अथर्ववेद काण्ड 07 सूक्त 80 के चार मन्त्र पौर्णमासी देवता वाले हैं ।

14. अमावास्या के तीन भेद हैं - सिनीवाली दर्श तथा कुहू ।

15. चतुर्दशी का अंतिम (आठवां) प्रहर और अमावास्या के आठ प्रहर कुल नौ प्रहर चन्द्रमा का क्षय काल है ।

1. प्रारंभिक दो प्रहर जो चन्द्रमा की सूक्ष्मता के लिये प्रसिद्ध है - सिनीवाली है ।

2. बीच वाले पांच प्रहर को 'दर्श' नाम से प्रसिद्ध किया गया है ।

3. अंतिम दो प्रहर जब चन्द्रमा की कला का सम्पूर्ण क्षय हो जाता है - कूहू कहा जाता है ।

16. सिनीवाली, दर्श और कुहू शब्दों का अभिप्राय :-

1. या पूर्वा अमावास्या सा सिनीवाली सा दृष्टेन्द

= अमावास्या का पूर्वभाग सिनीवाली है ।

सिनं अन्नं भवति ।

= सिन अन्न को कहते हैं,

सनाति भूतानि ।

= जीवों का धारण करता है ।

वाल का अर्थ है गांठ, पर्व, ग्रन्थि, समस्त रोगों का निवारक ।

वृण्वन्ति देवाः तत्र हवींषि ।

= देवता उस दिन हवि ग्रहण करते हैं, अतः वाल नाम पड़ा ।

दर्शप्रतिपत्सन्धौ च तिथि विशेष (हेमकोष)

= अमावास्या एवं प्रतिपदा की संधि का नाम वाल है ।

तस्मिन् अन्नवती सिनीवाली ।

= उस पर्व में यह अन्नवती है अतः सिनीवाली है। चन्द्रमा की रशिमयों से ही अन्न का गर्भ सम्भव होता है ।

सिनीवाली = अन्न प्रदान करने वाली

2. सूर्येण सहैव दर्शनीयः चन्द्रः दर्शेति ।

=अमावास्या में सूर्य के साथ दर्शनीय चन्द्रमा का नाम दर्श है अथवा शुक्ल प्रतिपदा को द्रष्टव्य एक कला चन्द्रमा दर्श है ।

3. उत्तरा अमावास्या का नाम कूहू है ।

सा नष्टेन्दुकला अर्थात् नष्ट कलायुक्त चन्द्रमा कुहू है ।

अस्मिन् यो सुहवा जोहवीमि

- (अथर्ववेद 07 / 47 / 01)

= सुन्दर आव्हान वाली अमावास्या को इस यज्ञ में बुलाता हूँ।

17. अथर्ववेद काण्ड ०७ सूक्त ४६ के तीन मन्त्र सिनीवाली देवता वाले हैं ।

अथर्ववेद काण्ड 07 सूक्त 47 के दो मन्त्र कुहू देवता वाले हैं ।

अथर्ववेद काण्ड 07 सूक्त 79 के चार मन्त्र अमावास्या देवता वाले हैं ।

अथर्ववेद काण्ड 07 सूक्त 81 के छः मन्त्र चन्द्रमा (दर्श) देवता वाले हैं ।

17/1. पूर्णमासेष्टि

{पूर्णिमा के दिन नित्य-अग्निहोत्र की आहुतियाँ देने के बाद पूर्णमासेष्टि के आगे लिखे मंत्रों से घी-सामग्री की आहुतियाँ देवें ।}

प्रधानयाग

स्थालीपाक अर्थात् मीठा भात या खिचड़ी (नमकरहित) या खीर अथवा मोहनभोग (हलुवा) या मोदक (लड्डू) में घी मिलाकर तीन आहुतियाँ देवें ।

(1) अग्नये स्वाहा।।

(2) अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा।।

(3) विष्णवे स्वाहा।।

अनुमति सूक्त

अथर्ववेद (07 / 20)

{ऋषि-ब्रह्मा । देवता-अनुमति। छनद-अनुष्टुप्, 3 त्रिष्टुप, 4 भूरिक् अनुष्टुप, 5 जगती, 6 अति शाक्वरगर्भा जगती ।}

अन्वद्य नोऽनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् ।
अग्निश्व हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मम ।।1।।

अनुमति देवी आज हमारे अनुकूल होकर, हमारे यज्ञ की जानकारी समस्त देवताओं तक पहुँचाएँ। अग्निदेव भी हमारे द्वारा अर्पित हवि को समस्त देवगणों तक पहुँचाएँ ।।1।।

अन्विदनुमते त्वं मंससे शं च नस्कृधि ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ।।2।।

हे अनुमति नामक देवि! आप हमें कल्याण करने वाले कार्य करने की सुबुद्धि प्रदान करें। आप अग्नि में अर्पित हवि को ग्रहण करके हमें श्रेष्ठ प्रजाएँ प्रदान करें ।।2।।

अनु मन्यतामनुमन्यमानः प्रजावन्तं रयिमक्षीयमाणम् ।
तस्य वयं हेडसि मापि भूम सुमृडीके अस्य सुमतौ स्याम ।।3।।

हे अनुमन्ता पुंदेव! आप हम पर क्रोधि न हों, बल्कि सुखदायक बुद्धि से हमें पुत्रादि एवं अक्षय धन प्रदान करने का अनुग्रह करें ।।3।।

यत् ते नाम सुहवं सुप्रणीतेऽनुमते अनुमतं सुदानु ।
तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ।।4।।

हे धनदात्री अनुमति देवि! उत्तम नीति वाली, आवाहन करने योग्य, अभिमत फलदायिनी आप हमारे यज्ञ को पूर्णता तक पहुँचाएँ । हे वरणीय सौभाग्यशाली देवि! आप हमें उत्तम वीरों सहित श्रेष्ठ धन प्रदान करें ।।4।।

एमं यज्ञमनुमतिर्जगाम सुक्षेत्रतायै सुवीरतायै सुजातम् ।
भद्रा ह्यस्याः प्रमतिर्बभूव सेमं यज्ञमवतु देवगोपा ।।5।।

हे अनुमति देवि! आप, हमारे इस विधिवत् सम्पन्न होने वाले यज्ञ की रक्षा करते हुए, सुक्षेत्र पुत्रादि फल देने के लिए पधारें। हे देवि! आपकी कृपा से ही श्रेष्ठ कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त होती है ।।5।।

अनुमतिः सर्वमिदं बभूव यत् तिष्ठति चरति यदु च विश्वमेजति ।
तस्यास्ते देवि सुमतौ स्यामानुमते अनु हि मंससे नः ।।6।।

हे अनुमति देवि! इस चराचर जगत् में, अबुद्धिपूर्वक कार्य करने वालों में अनुमति रूप से संव्याप्त आप हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करें ।।6।।

पूर्णिमा सूक्त

अथर्ववेद (7 / 80)

{ऋषि-अथर्वा । देवता-1-2,4 पौर्णमासी, 3 प्रजापति । छन्द-त्रिष्टुप, 2 अनुष्टुप ।}

पूर्णा पश्वादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय ।
तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम।।१।।

पूर्ण चन्द्र वाली तिथि को पूर्णमासी कहते हैं। पूर्व में, पश्चिम में एवं मध्य में यह दमकती है उसमें देवताओं के साथ रहते हुए हम स्वर्ग से ऊपर अन्नरस प्राप्त कर आनन्दित हों ।।1।।

वृषभं वाजिनं वयं पौर्णमासं यजामहे ।
स नो ददात्वक्षितां रयिमनुपदस्वतीम् ।।2।।

अभिलषित फल के देने वाले हविरूप, अन्नरूप अन्न वाले पूर्णमास का हम यजन करते हैं। वे पूजित पूर्णमास प्रसन्न होकर अक्षय एवं अविनाशी धन प्रदान करें ।।2।।

प्रजापतेनत्वदेतान्यन्योविश्वा परिभूर्जजान ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्तो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।।३।।

हे प्रजापति देव ! आप सर्वत्र व्याप्त होकर समस्त रूपों के सृजेता हैं, अन्य कोई ऐसा कने में समर्थ नहीं हैं। जिन कामनाओं से हम आहुति अर्पित करते हैं, उन्हें आप पूर्ण करें एवं हमें धन प्रदान करें ।।3।।

पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु ।
यं त्वां यज्ञैर्यज्ञिये अर्धन्त्यमी ते नाके सुकृतः प्रविष्टाः ।।4।।

पूर्णिमाा तिथि दिन तथा रात्रि दोनों में प्रथम यज्ञ करने योग्य है । हे पूजनीय पूर्णिमा! जो यज्ञों द्वारा आपकी पूजा करते हैं उन श्रेष्ठ कर्म करने वालों को स्वर्गधाम में प्रवेश मिलता हैं ।।4।।

राका सूक्त

अथर्ववेद (7/48)
(ऋषि-अथर्वा । देवता-राका । छन्द-जगती)

राकामहं सुहवा सुष्टुती हुवेश्रृणोतुनः शुभगा बोधतुत्मना ।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातुवीरं शतदायमुक्थ्यम् ।।1।।

उन पूर्ण चन्द्रमा के सामने आल्हाददायिनी, स्तुति करने योग्य देवी का हम उत्तम ढंग से आवाहन करते हैं। वे सौभाग्यशालिनी देवी अपनी सुई एवं सीने की विशेष क्रिया के दिव्य प्रभाव से हमें सैकड़ों प्रकार के दान देने में समर्थ यशस्वी पुत्र प्रदान करें ।।1।।

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
तार्भिनो अद्य सुमना उपागहि सहस्रापोषं सुभगे रराणा ।।2।।

हे राका देवि! आप उत्तम सुन्दर सुमतियों के द्वारा हवि दाता यजमान को कल्याणकारी धन देती हैं। आज उन्हं सुमतियों सहित प्रसन्न मन होकर आएँ और हमें श्रेष्ठ धन से पुष्ट करें ।।2।।

17/2. दर्शेष्टि (अमावास्या-यज्ञ)

(अमावास्या के दिन नित्य-यज्ञ कर दर्शेष्टि के आगे लिखे मन्त्रों से घी और सामग्री की आहुतियाँ देवें।)

प्रधानयाग

स्थालीपाक अर्थात् मीठा भात या खिचड़ी (नमकरहित) या खीर अथवा मोहनभोग (हलुवा) या मोदक (लड्डू) में घी मिलाकर तीन आहुतियाँ देंवें :-

ओ३म् अग्नये स्वाहा ।।
ओ३म् इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा ।।
ओ३म् विष्णवे स्वाहा ।।

सिनीवाली सूक्त

अथर्ववेद {07/46}
{ऋषि-अथर्वा । देवता-सिनीवाली । छन्द-अनुष्टुप, 3 त्रिष्टुप ।}

सिनीवालि पृथुष्टुके यादेवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देविदिदिड्ढि नः ।।1।।

हे सिनीवालि! आप अनेकों द्वारा स्तुत्य हैं। आप देवताओं को भगिनीरूप ही हैं, ऐसे महान् गुणों वाली हे देवि! आप हमारे द्वारा अर्पित हवि को ग्रहण करें एवं प्रसन्न होकर पुत्रादि प्रजा प्रदान करें ।।1।।

या सुबाहुः स्वङ्गुरि सुषूमा बहुसूवरी ।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिश्नीवाल्यै जुहोतन ।।2।।

हे ऋत्विज् और यजमानों ! जो सिनीवाली देवी सुन्दर बाहु, सुन्दर अंगुलियों एवं-सौष्ठव से सुशोभित होने वाली है, आप उन उत्तम संतान देने वाली देवी को हवि अर्पित करें।।२।।

या विश्वपत्नीन्द्रमसि प्रतीची सहस्रस्तुकाभियन्ती देवी ।
विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हर्वीषिपतिं देवि राधसे चोदयस्व ।।3।।

हे प्रजापालिका सिनीवाली देवि! आप परम ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्रदेव (सूर्य) के सामने जाती हैं, उनकी पूजा करती हैं । हजारों लोगों से स्तुत्य हे व्यापनशील देव की पत्नी! हम आपके लिए हवि अर्पित करते हैं, आप प्रसन्न होकर अपने पति इन्द्रदेव द्वारा धन प्रदान कराएँ ।।3।।

अमावास्या सूक्त

अथर्ववेद (07/79)

(ऋषि-अथर्वा । देवता-अमावास्या । छन्द-। जगती, 2–4 त्रिष्टुप ।)

अमावास्या का अर्थ होता है - ''एकत्र वास करने वाली''। इस समय सूर्य (उग्रदेव) तथा चन्द्र (शान्तदेव) एक साथ रहते हैं। दिव्यशक्तियाँ या श्रेष्ठ संकल्प युक्त मानव जब एक साथ होकर पूरूषार्थ करते हैं, तब ऐसा योग बनता है -

यत् ते देवा अकृण्वन् भागधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा ।
तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ।।1।।

हे अमावास्ये! आपके महत्व को स्वीकार करके देवगणों ने आपके हवि का जो भाग अर्पित किया है, उसे ग्रहण कर हमारे इस यज्ञ को पूर्ण करें। आप हमें कार्यकुशल, सुन्दर पुत्रादि सहित धन प्रदान करें ।।1।।

अहमेवास्म्यमावास्या३ मामा वसन्ति सुकृतो मयीमे ।
मयि देवा उभये साध्याश्वेन्द्रज्येष्ठाः समगच्छन्त सर्वे ।।2।।

मैं अमावास्या का अधिष्ठाता देव हूँ। श्रेष्ठ कर्म करने वाले देवता मेरे में वास करते हैं और साधने योग्य स्थावर और जंगम दोनों प्रकार के देवता मुझ में आकर समभाव से रहते हैं ।।2।।

आगन् रात्री संगनी वसूनामूर्जं पुष्टं वस्वावेशयन्ती ।
अमावास्यायै हविषा विधेमोर्जं दुहाना पयसा न आगन् ।।3।।

समस्त वस्तुओं को मिलाने वाली पुष्टिकारक और बल-वर्द्धक धन

देने वाली प्रतीक्षित अमावास्या वाली रात्रि आ गई है। इसके निमित हम हवि अर्पित करते हैं। वे हमें अन्न, दुग्ध, अन्य रस एवं धन आदि से पुष्ट करें ।।3।।

अमावास्ये न त्वदेतान्यन्यो विश्वा परिभूर्जजान ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो
रयीणाम् ।।4।।

हे अमावास्ये! आपके अतिरिक्त कोई अन्य देवता समस्त जगत् की रचन करने में समर्थ नही है। हम आपको हवि अर्पित करते हुए मनोकामनाओं की पूर्ति की प्रार्थना करते हैं। हवि ग्रहण करके आप हमारी मनोकामनाओं को पूर्ण करते हुए हमें धन प्रदान करें ।।4।।

चन्द्र (दर्श) सूक्त

अथर्ववेद (7/81)

पूर्वापरंचरतो माययैतो शिशू क्रीडन्तौ परियातोऽर्णवम ।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूंरन्यो विदधाज्जायसे नवः ।।1।।

माया (कौशल) के द्वारा आगे-पीछे चलते हुए दो बालक (सूर्य और चन्द्र) क्रीड़ा करते हुए से एक दूसरे का पीछा करते हुए समुद्र तक पहुँचते हैं। उनमें से एक (सूर्य) समस्त भुवनों को प्रकाशित करता है और दूसरा (चन्द्र) ऋतुओं को बनाता हुआ स्वयं नवीन-नवीन (नई कलाओं वाले) रूपों में उत्पन्न होता है ।।1।।

नवोनवो भवसि जायमानोऽव्हांकेतुरूषसामेष्यग्रम् ।
भागं देवभ्यो विदधास्यायन् प्रचन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ।।2।।

हे चन्द्रदेव! आप कला बदलते रहने के कारण नित्य नवीन हैं। आप उसी तरह तिथियों के ज्ञापक हैं, जिस तरह केतु (ध्वजा) किसी स्थान विशेष का ज्ञापन करता है । हे सूर्यदेव ! आप दिनों का ज्ञापन करते हुए, उषाकाल के अन्तिम समय में प्रकट होते हैं । आप समस्त देवताओं को उनका उचित हविर्भाग अर्पित करते हैं और चन्द्रदेव दीर्घ आयु प्रदान करते हैं ।।2।।

सोमस्यांशो युधां पतेऽनूनो नाम वा असि ।
अनूनं दर्श मा कृधि प्रजया च धनेनच ।।3।।

हे सोम के अंश ! हे युद्धों के स्वामी ! आपका यश कभी क्षीण नहीं होता । है दर्शनीयदेव ! आप प्रसन्न होकर हमें प्रजा एवं श्रेष्ठ धनादि से परिपूर्ण करें ।।3।।

दर्शोऽसिदर्शतोऽसि समग्रोऽसि समन्तः।
समग्रः समन्तो भूयासं गोभिर वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ।।4।।

हे दर्शनीय सोम ! आप दर्शन करने योग्य हैं । आप अनेक कलाओं द्वारा विकसित होकर (पूर्णिमा) समग्न हो जाते हैं । आप स्वयं पूर्ण हैं, अतएव हमको भी अश्व, गौ, सन्तान, घर एवं धनादि से अन्त तक परिपूर्ण रखें ।।4।।

यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्य त्वं प्राणेना प्यास्व ।
आ वयं प्याशिषीमहि गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ।।5।।

हे सोमदेव! जो शत्रु हमसे द्वेष करते हैं, उनसे हम भी द्वेष करते हैं। आप उन शत्रुओं के प्राणों (को खींचकर उन) से आगे बढ़ें । हमें भी अश्व, गौ आदि पशु एवं घर, धनादि द्वारा सम्पन्न करें ।।5।।

यं देवा अंशुमाप्यायन्तियमक्षितमक्षिता भक्षयन्ति ।
तेनास्मानिन्द्रो वरूणो वृहस्पतिराप्याययन्तु भुवनस्य गोपाः ।।6।।

जिन एक कलात्मक सोमदेव को देवता शुक्लपक्ष में प्रतिदिन एक एक कला से बढ़ाते हैं। जिस क्षयरहित सोम का अविनाशीदेव भक्षण करते हैं। देवाधिपति इन्द्रदेव, वरूणदेव एवं बृहस्पतिदेव उस सोम के द्वारा हमारा कल्याण करते हुए हमें आगे बढ़ाएँ ।।6।।

कुहू सूक्त

अथर्ववेद (07/47)

(ऋषि-अथर्वा । देवता-कुहू । छन्द-जगती, 2 त्रिष्टुप)

कुहूं देवीं सुकृतं विद्मनापसमस्मिन् यज्ञ सुहवा जोहवीमि ।
सा नो रयिं विश्ववारं नियच्छाद् ददातुवीरं शतदायमुक्थ्यम् ।।1।।

कुहू देवी उत्तम कर्म वाली, ज्ञानपूर्वक कर्म करने वाली तथा स्तुति करने योग्य हैं। ऐसी दिव्य शक्ति सम्पन्न देवी को हम यज्ञ में आवाहन करते हैं। वे प्रसन्न होकर हमें श्रेष्ठ धन एवं सैकड़ों प्रकार से दान करने वाले वीर पुत्र प्रदान करें ।।1।।

कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविषो जुषेत ।
शृणोतु यज्ञमुशती नो अद्य रायस्पोषं चिकितुषी दधातु ।।2।।

देवताओं में जो अमृतरूप हैं, कुहू देवी उनकी पत्नी (पालन करने वाली) हैं। आवाहन करने योग्य देवी हमारे इस यज्ञ में आकर हवि ग्रहण करें । हमें धनादि से पुष्ट करें ।।2।।

यज्ञोपैथी में ऋषि, देवता, छन्द और स्वर से युक्त अपौरूषेय वेदमंत्र के स्थान पर पौरूषेय श्लोक आदि का प्रयोग अनुचित हैं।

18. शान्ति सूक्त

पूर्वकथन :-

1. दैनिक यज्ञ (नित्य अग्निहोत्र) कर लेने के बाद अथर्ववेद के शान्ति सूक्त (19/9) के मंत्रों से घी, सामग्री की आहुतियाँ दी जायें।
2. महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित 'संस्कार विधि' के सामान्य प्रकरण मे शान्तिकरण के मंत्रों से स्वाहाकार यज्ञ कर सकते हैं।
3. शमु उपशमें धातु से क्तिन् प्रत्यय से बने हुए स्त्रीलिंग 'शान्ति' शब्द का अर्थ है - समन्वित होना (to harmonized)
4. पदार्थों का परस्पर समन्वय ही शान्ति है।
5. मन्त्रों में आये 'शं' का अर्थ है शान्ति :-

   'शं शान्त्यै सुखाय च भवताम्' ।
6. अथर्ववेद 19/9 के 14 मन्त्रों पर विचार करने से आत्मशान्ति, ब्रह्मशान्ति और विश्वशान्ति की कामनाओं का बोध होता है।

अथर्ववेद (19/9)

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्व१ न्तरिक्षम् ।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्तवोषधीः ।।1।।

प्रकाशमान (सूर्य आदि), चौड़ी (पृथ्वी आदि), यह चौड़ा मध्यवर्ती आकाश, उत्तम जल वाली फैली हुई नदियां और अन्नादि औषधियां हमारे लिए शान्तियुक्त होवें ।।1।।

शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम् ।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ।।2।।

पूर्व रूप, किया हुआ और न किया हुआ हमारे लिए शान्तियुक्त होवें। बीता हुआ, होने वाला और सब ही हमारे लिये शान्तियुक्त होवें ।।2।।

इयं या परमेष्ठिनी वाग् देवी ब्रह्मसंशिता ।
ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ।।3।।

यह जो सर्वोत्कृष्ट परमात्मा में ठहरने वाली, उत्तम गुण वाली वाणी

वेदज्ञान से तीक्ष्ण की गई है, और जिस के द्वारा ही घोर (भयंकर पाप) उत्पन्न हुआ है, उसके द्वारा ही हमारे लिए शान्ति होवे ।।3।।

इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम्।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ।।4।।

यह जो सर्वोत्कृष्ट परमात्मा में ठहरने वाला मन वेदज्ञान से तीक्ष्ण किया गया है, और जिस के द्वारा ही घोर (भयंकर पाप) उत्पन्न हुआ है, उसके द्वारा ही हमारे लिए शान्ति होवे ।।4।।

इमानि यानि पंञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ।।5।।

ये जो छठे मन सहित पांच इन्द्रियां (कान, नेत्र, नासिका, जिहा और त्वचा ज्ञानेन्द्रियां) मेरे हृदय में वेद ज्ञान से तीक्ष्ण की गयी है और जिन के द्वारा ही घोर (भयंकर पाप) उत्पन्न हुआ है उनके द्वारा ही हमारे लिए शान्ति होवे ।।5।।

शं नो मित्रः शं वरूणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्र्यमा ।।6।।

हमारे लिए सबका मित्र (परमेश्वर या विद्वान् पुरूष), सब में श्रेष्ठ वरूण, सब गुणों में व्यापक विष्णु, प्रजापति (प्रजाओं का रक्षक) परम ऐश्वर्यवान् इन्द्र, वेद विद्या का रक्षक बृहस्पति, श्रेष्ठों का मान करने वाला अर्यमा, शान्तिदायक होवें ।।6।।

शं नो मित्रः शं वरूणः शं विवस्वाञ्छमन्तकः।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ।।7।।

हमारे लिए प्राण वायु, जल या अपान वायु, चमकने वाला सूर्य, अन्त करने वाला (मृत्यु), पृथिवी पर होने वाले और अन्तरिक्ष में होने वाले उपद्रव तथा सूर्य के प्रभाव में घूमने वाले ग्रह (चन्द्र, मंगल आदि) शान्तिदायक होवें ।।7।।

शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत्।
शं गावो लोहितक्षीराः श भूमिरव तीर्यतीः ।।8।।

हमारे लिये कांपती हुई भूमि और जो कुछ उल्काओं से नष्ट किया गया है, रूधिर युक्त दूध देने वाली गौयें और धसकती हुई भूमि शान्तिदाक होवें ।।8।।

नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः।
शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ।।9।।

उल्काओं से नष्ट किया हुआ नक्षत्र हमें शान्तिदायक होवे, हमारे लिए विरूद्ध आचरण और हिंसक क्रियाएं शान्तिदायक होवें । खोदे हुए, गढ़े हुए उल्काएं और देश के उपद्रव हमें शान्तिदायक होवें ।।9।।

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रूद्रास्तिग्मतेजसः ।।10।।

चन्द्रमा के ग्रह (कृतिका आदि नक्षत्र), और सूर्य राहु के साथ, मृत्युरूप धूमकेतु, तीक्ष्ण तेज वाले गतिमान (बृहस्पति आदि ग्रह) हमें शान्तिदायक होवें ।।10।।

शं रूद्रा शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ।।11।।

रूद्र (ग्यारह रूद्र अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीवात्मा), वसु (आठ वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य, प्रकाश, चन्द्रमा और तारागण), महीने (चैत्र आदि बारह महीने), अग्नियां (शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक बल), महर्षि (बड़े, बड़े वेदज्ञाता) विद्वान् लोग, उत्तम व्यवहार और बड़े ब्रह्मांडों का स्वामी शान्तिदायक होवे ।।11।।

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्त ऋृषयोऽग्नयः।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो में शर्म यच्छतु बह्मा में शर्म यच्छतु
विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ।।12।।

अन्न, प्रजापालक (इन्द्रियादि का रक्षक) और पोषक (जीवात्मा), सब लोक (पृथिवी आदि), ऋग्वेद आदि चारो वेद, सात ऋषि (कान, आंख, जिह्वा, नासिका, त्वचा, पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि) और अग्नि (शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक पराक्रम) उन करके मेरे लिये कल्याण का

मार्ग बनाया गया, इन्द्र (परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर), ब्रह्मा (सब से बड़ा परमात्मा), सब देव मेरे लिए सुख देवें ।।12।।

यानि कानि चिछान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः।
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मे अस्त्वमयं मे अस्तु ।।13।।

जिन किन्हीं भी शान्त कर्मों को संसार में सात ऋषि (कान, आंख, जिह्वा, नासिका, त्वचा, पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि) जानते हैं, मेरे लिए शान्तिदायक होवें ।।13।।

पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः। ताभिः शान्तिभिः सर्व शान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः ।।14।।

भूमि, मध्यलोक (वायुमण्डल, मेघमण्डल तारागण आदि), प्रकाशमान (सूर्य आदि), जल, ओषधियाँ (अन्न आदि), वनस्पतियाँ (वट आदि वृक्ष), सब विद्वान लोग, सब उत्तम पदार्थ मेरे लिए शान्तिदायक हों। शान्तियों (सुखदायक क्रियाओं) के साथ शान्ति (धैर्य आदि) हों। उन शान्तियों (आनन्द क्रियाओं) से, सब शान्तियों (धैर्य क्रियाओं) से हम शान्ति पावें, जो कुछ यहाँ पर घोर (भयंकर) हो, जो कुछ यहाँ पर क्रूर (निर्दय) हो, और जो कुछ यहाँ पर पाप (अनिष्ट) हो वह शान्तियुक्त हो, वह कल्याणकारक हो, सब ही हमारे लिये शान्तिदायक हो ।।14।।

प्रायश्चित्त मन्त्र
(स्विष्टकृत आहुति)

पूर्वकथन :-

1. यज्ञाग्नि में नित्य और नैमित्तिक आहुतियाँ देने के पश्चात् पूर्णाहुति से पहले प्रायश्चित्त के निमित्त स्विष्टकृत आहुति दी जाती है ।

2. प्रायश्चित्त एवं स्विष्टकृत शब्दों पर चिन्तन करने से ध्वनित होता है कि यही विनम्र क्षमा-प्रार्थना करने की आवश्यकता नही है ।

3. प्रायश्चित्त शब्द का अर्थ :-

(क) भाषाभाष्यकार महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यजुर्वेद 39 / 12 में पठित मन्त्रांश 'प्रायश्चित्यै स्वाहा' का पदार्थ लिखा है - पाप निवृत्ति के लिये आहुति करें ।

(ख) वैदिक कोशकार ने प्रायश्चित्त का अर्थ लिखा है 'बिगड़े कार्य और पापाचरण को सुधारना' ।

(ग) आप्टे के संस्कृत हिन्दी कोश में निरूक्ति पूर्वक अर्थ द्रष्टव्य है ।
प्रायस्य पापस्य चित्तं विशोधनं यस्मात् प्रायश्चित्तम् ।
= पाप से निस्तार पाने के लिये धार्मिक साधना, पापनिष्कृति, निश्चर्ति सुधार ।

(घ) प्रायों नाम तपः प्राक्तं चित्तं निश्चय उच्वते तपोनिश्चय संयोगात् प्रायश्चित्तमितीर्यते ।

- हेमाद्रि

= निश्चयपूर्वक तप का नाम प्रायश्चित्त है ।

4. स्विष्टकृत शब्द का अर्थ :-

(क) सु+इष्ट+कृत = स्विष्टकृत ।
(कर्ता, निर्माता, उत्पादक अर्थ में समासान्त कृ+क्विप्)

(ख) भाषाभाष्यकार महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यजुर्वेद 21 / 58 एवं 22 / 45 में पठित मन्त्रांश 'देवो अग्निः स्विष्टकृत्' का पदार्थ लिखा है ।
= सुन्दर चाहे हुए सुख का करने हारा दिव्य सुन्दर आग ।

(ग) वैदिक कोशकार ने स्विष्टकृत का अर्थ लिखा है-
1. यज्ञ की न्यूनाधिकता को पूर्ण करने वाला अग्नि ।
2. उत्तम यज्ञों का कर्त्ता ।

(घ) शतपथ ब्राह्मण 11—2—7—18 में 'तपः स्विष्टकृत' कहा है ।

(ङ) ऐतरेय ब्राह्मण 2 / 10 में प्रतिष्ठा को स्विष्टकृत कहा है ।

5. घृत या भात या खीर अथवा मिष्टान्न की एक आहुति अग्रलिखित मन्त्र से दी जाय :-

ओ३म् यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्।
अग्निष्टत् स्विष्टकृद्विद्यात् सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे।
अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां
समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्धय स्वाहा।।
इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्न मम।।

हे सर्वरक्षक परमात्मन् ! इस यज्ञकर्म में जो कुछ विधि से अधिक किया है अथवा यहाँ जो कुछ न्यूनता (कमी) रह गई है, शुभ इच्छाओं को पूर्ण करने वाले आप मेरी सब कामनाओं को जानते हैं । हे प्रभु आप मेरे इस कर्म को सफल करें । इच्छित वस्तु के देने वाले, यज्ञ को सफल करने वाले, सब प्रायश्चित्त आहुतियों और समस्त कामनाओं के फल देकर बढ़ाने वाले परमात्मा के लिये यह आहुति है, वह हमारी सब कामनाओं (सदिच्छाओं) को पूर्ण कर हमें उन्नत करें। यह आहुति कामनापूरक परमात्मा के लिये है इसमें मेरा कुछ नहीं है ।

प्रजापति के लिए मौन आहुति
ओ३म् प्रजापतये स्वाहा ।। इंद्र प्रजापतये इदन मम ।।

पूर्णाहुति मन्त्र

आहुतियों की पूर्णता का परिचायक है पूर्णाहुति! पूर्णाहुति का अभिप्राय है यज्ञ की सफलता का प्रदर्शन । यहीं विसर्जन है। इसके अतिरिक्त विसर्जन की प्रक्रिया अनुपयुक्त है क्योंकि ईश्वर सर्वत्र व्यापक है, उसका कहीं जाना - आना सम्भव नहीं । देवशक्तियाँ सदैव हमारे चारों ओर विराजमान होती हैं, उन्हें बुलाना या भगाना अनुचित प्रतीत होता है। पूर्णाहुति के पश्चात् कोई क्रिया शेष नहीं रहती । जिन्हें यज्ञीय ऊर्जा के पूर्ण प्रभाव से प्रभावित होना हो वे वहीं मौन बैठे रहें । (मौनात् शक्ति-संचयम्= मौन से खोई हुई शक्ति प्राप्त होती है)

मानसिक, वाचिक और कायिक अर्थात् मन, वचन, कर्म से हर क्रिया पूरी होती है अतएव पूर्णाहुति भी त्रिस्तरीय है, तीन आहुतियों वाली है :-

ओ३म् सर्वं वै पूर्ण ँ स्वाहा।
ओ३म् सर्वं वै पूर्ण ँ स्वाहा।
ओ३म् सर्वं वै पूर्ण ँ स्वाहा।

हे जगदीश्वर! हमारे सब कार्य सफल और पूर्ण हों । परमात्मा को पूर्ण यज्ञ समर्पित है ।

यज्ञभस्म चिकित्सा

भसत्........वैश्वानरं भस्मना । (यजुर्वेद 25/8)

जले हुए पदार्थ के शेषभाग (राख) से सब के प्रकाश करने हारे (सर्वजनहितकारी) अग्नि को जानना चाहिए ।

- महर्षि दयानन्द सरस्वती

यज्ञापैथी में हवन के बाद बचे हुए भस्म का प्रयोग रोगनिवारण में किया जाये, जिसका परिणाम निश्चित ही सकारात्मक होता है। यद्यपि फार्मास्युटिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट प. जर्मनी के प्रमुख बर्थोल्ड - मोनिका येले दम्पति ने अग्निहोत्र भस्म के चिकित्सकीय गुणों को जानकर उसका दवाई के रूप में सफल प्रयोग शुरू किया है । विदित हो कि भारत सहित जापान, पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, जर्मनी व अमेरिका आदि कई देशों में अग्निहोत्र किय जा रहा है और उसके आश्चर्यजनक प्रभाव एवं भस्म पर अनुसन्धान जारी है ।

उक्त अग्निहोत्र में तांबे अथवा मिट्टी के पिरामिड आकार वाले कुण्ड में गाय के गोबर के कण्डे की आग पर प्रत्येक सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय 8—10 अक्षत (साबूत चांवल) हाथ की हथेली में लेकर गौघृत की दो चार बूंदे मिलाकर दो-दो आहुतियाँ अग्रलिखित मन्त्रों से दी जाती है :-

सूर्योदय के समय

ओ३म् सूर्याय स्वाहा - सूर्याय इदं न मम ।
ओ३म् प्रजापतये स्वाहा - प्रजापतये इदं न मम ।।

सूर्यास्त के समय

ओ३म् अग्नये स्वाहा - अग्नये इदं न मम ।
ओ३म् प्रजापतये स्वाहा - प्रजापतये इदं न मम ।।

-शतपथ ब्राह्मण 2—2—4—17

तथापि यज्ञापैथी में अनेकों रोग निवारक मन्त्रों से दूध वाले वृक्षों की समिधाओं की अग्नि पर विविध जड़ी-बूटियों से निर्मित तथा गौघृत से मिश्रित सामग्री की आहुतियाँ दी जाती हैं। इस प्रक्रिया से यज्ञभस्म विशिष्ट प्रभावयुक्त होती है ।

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनस्य दाता ।।
प्रातः प्रातः गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनस्य दाता ।।

- अथर्ववेद

सायंकाल किया गया यज्ञ प्रातः काल तक एवं प्रातः काल किया गया यज्ञा सायंकाल तक उत्तम गुण का देने वाला है । अतएव यज्ञ करने के बाद 12 घण्टे तक उसी कुण्ड में रखी हुई भस्म को निकालकर आटा छानने की छननी से छान लें जिससे कोयला आदि अलग हो जाये । छानी हुई सफेद भस्म को खरल में ठीक ढंग से पीस लें और पुनः कपड़छन कर मिट्टी के मटके या कांच की बरनी में अथवा ताम्बे के घड़े में रख लें । कपड़छान के बाद बचे मोटे अंश को पानी में घोलकर पेड़ पौधों में डाल दें, यह उत्तम खाद तथा कीटनाशक है । यज्ञभस्म अभूतपूर्व जलशोधक है । जैसे यज्ञ की एक मात्रा, प्रदूषण की हजार मात्रा को शुद्ध करने में समर्थ है वैसे ही एक चम्मच यज्ञभस्म कई लीटर पानी को शुद्ध तथा गुणकारी बना देती है । यज्ञभस्म (यज्ञ चूर्ण पावडर) सर्वरोग निवारक औषधि है ।

रोग के अनुसार शहद, दूध, पानी, छाछ (मट्ठे) आदि के साथ सेवन कर सकते हैं ।

यज्ञ संपुटिका (केप्सूल) शाकाहारी केप्सूल में यज्ञचूर्ण (पावडर) भरकर नियमत सेवन करने से रोग प्रतिरोधक शक्ति का विकास, रोग निवारण तथा सुस्वास्थ्य की प्राप्ति सम्भव है ।

यज्ञविलेप (मलहम) - 80 प्रतिशत अर्थात् आठ भाग गौघृत में दो भाग (20 प्रतिशत) यज्ञचूर्ण एक ताम्बे की थाली में डालकर अच्छी तरह फेंट कर (मिलाकर) कांच की शीशी में भरलें । खाज-खुजली, चोट मोच, जल जाने आदि की स्थिति में प्रभावित अंग पर यज्ञविलेप लगायें ।

यज्ञबिन्दु (ड्राप्स) - पीतल की पतीली में पानी भरकर उसे चूल्हे पर उबलनें के लिये रखा जाये । ताम्बे के एक लोटे में 90 प्रतिशत (नौ भाग) डिस्टिल्ड वाटर या गुलाब जल 10 प्रतिशत (एक भाग) यज्ञचूर्ण भरकर इस लोटे को पतीली के उबलते जल में सावधानीपूर्वक रखें ताकि पतीली का उबलताा जल लोटे में न जाए । जब लोटे का जल एक चौथाई रह जाये तब लोटे को पतीली से निकालकर अलग रखें ।

यज्ञचूर्ण जब तली में बैठ जाये तब कांच की बोतल में कांच की चुग्गी के उपर फिल्टर पेपर से छानकर जो शुद्ध मिश्रण भरा जायेगा वही यज्ञबिन्दु (ड्राप्स) है। आँख, नाक और कान की किसी भी तकलीफ में कुछ बूंद डालें।

यज्ञोपैथी से निर्मित यज्ञचूर्ण या केप्सूल के संभावित नाम

1. सुहार्त : हृदयरोग निवारक यज्ञ के भस्म से निर्मित।

2. सुरक्त : रक्तजरोग निवारक यज्ञ के भस्म से निर्मित।

3. स्वस्थि : अस्थिजन्य रोगनिवारक यज्ञ के भस्म से निर्मित।

4. सौमनस् : मानसिक रोग निवारक यज्ञ के भस्म से निर्मित।

5. सुक्षय : क्षयरोग निवारक यज्ञ के भस्म से निर्मित।

6. सुसूत : बन्ध्यात्व निवारक यज्ञ के भस्म से निर्मित।

7. सुविता : नारी सुख प्रसूति यज्ञ के भस्म से निर्मित।

8. सुकास : कास (खांसी) निवारक यज्ञ के भस्म से निर्मित।

9. सुश्वस : श्वास रोग निवारक यज्ञ के भस्म से निर्मित।

10. सुतक्स : तक्सा (ज्वर) नाशक यज्ञ के भस्म से निर्मित।

11. सुवात : वातव्याधि निवारक यज्ञ के भस्म से निर्मित।

12. सुचक्षु : नेत्ररोग निवारक यज्ञ के भस्म से निर्मित।

13. स्वक्षि : यज्ञबिन्दु (ड्राप्स) का नाम।

14. स्वोज : ओजक्षय (एड्स) निवारक यज्ञ से निर्मित भस्म।

यज्ञ प्रार्थना

पूजनीय प्रभो ! हमारे भाव उज्जवल कीजिये।
छोड़ देवें छल कपट को, मानसिक बल दीजिये॥
वेद की बोलें ऋचाएं सत्य को धारण करें।
हर्ष में हो मग्न सारे शोक सागर से तरे॥
अश्वमेधादिक रचायें यज्ञ पर उपकार को।
धर्म मर्यादा चलाकर लाभ दे संसार को॥
नित्य श्रद्धा भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें।
रोग पीड़ित विश्व के सन्ताप सब हरते रहें॥
भावना मिट जाय मन से पाप अत्याचार की।
कामनायें पूर्ण होवें यज्ञ से नर नार की॥
लाभकारी हो हवन हर जीवधारी के लिये।
वायु जल सर्वत्रा हों शुभ गन्ध को धारण किये॥
स्वार्थ भाव मिटे हमारा प्रेम पथ विस्तार हो।
इदन्न मम का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो॥
हाथ जोड़ झुकायें मस्तक वन्दना हम कर रहे।
नाथ करूणा रूप करूणा आपकी सब पर रहे॥

सर्व मंगल कामना

सुखी बसे संसार सब दुखिया रहे न कोय।
यह अभिलाषा हम सब की, भगवन पूरी होय॥
विद्या, बुद्धि, तेज, बल सबके भीतर होय।
दूध, पूत, धन धान्य से, वंचित रहे न कोय॥
आप की भक्ति प्रेम से, मन होवे भरपूर।
राग द्वेष से चित्त मेरा, कोसों भागे दूर॥
मिले भरोसा आपका, हमें सदा जगदीश।
आशा तेरे नाम की, बनी रहे मम ईश॥
हमें बचाओ पाप से, करके दया दयाल।
अपना भक्त बनाय कर, सबको करो निहाल॥
दिल में दया उदारता, मन में प्रेम अपार।
धैर्य हृदय में वीरता, सब को दो करतार॥
नारायण तुम आप हो, कष्ट के मोचन हार।
दूर करो दुर्गुण सभी, कर दो भाव से पार॥
हाथ जोड़ विनती करूं, सुनिये कृपा निधान।
साधु संगत सुख दीजिये, दया नम्रता दान॥

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

हे नाथ! सब सुखी हों कोई न हो दुखारी।
सब हों निरोग भगवान् धनधान्य के भण्डारी॥
सब भद्र भाव देखें, सन्मार्ग के पथिक हो।
दुखिया न कोई होवे सृष्टि में प्राणधारी॥

शान्ति मन्त्र

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः।
शान्तिरेवः शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।।
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

दुःख नाशक द्युलोक हो, अन्तरिक्ष भू लोक।
जल औषधियां सुख करें, वनस्पति आलोक।।
सब पदार्थ उरू वेद भी, शान्ति शान्ति हर छोर।
वही शान्ति मुझमें बढ़े, रहे शान्ति सब ओर।।

निर्देश

१. रोग निवाकर मन्त्रों के अन्त में स्वाहा बोलकर आहुतियाँ देवें।
२. समिधा अथवा राख (भभूति) पर आहुतियाँ न दें, ज्वाला वाली अग्नि अथवा अंगारे पर आहुतियाँ दें।
३. धूनि (धूम) चिकित्सा करते समय सावधानी रखें कि अंगारे पर आहुति देने के बाद अचानक ज्वाला न उठे ताकि कपड़े या शरीर आदि न जलें।
४. अनुष्ठानात्मक यज्ञों में पढ़े जाने वाले स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण, प्रधानयाग या पूर्णाहुति प्रकरण आदि महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत संस्कार विधि अथवा पंचमहायज्ञ विधि ग्रन्थ से पढ़ें।

परिशिष्ट - 1

वेदोद्धारक युगप्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती की यज्ञ सम्बन्धी वैज्ञानिक भविष्यवाणी

महर्षि दयानन्द सरस्वती
१८२४ - १८८३

1. जो अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त जो शिल्पव्यवहार और जो पदार्थ विज्ञान है जो कि जगत् के उपकार के लिये किया जाता है उसको 'यज्ञ' कहते हैं।

   आर्योद्देश्यरत्नमाला, संख्या 47

2. सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अग्निहोत्र का समय है।

   -सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास

3. पूर्वपक्षका प्रश्न - चन्दनादि घिस के किसी को लगावे वा घृतादि खाने को देवे तो बड़ा उपकार हो। अग्नि में डाल के व्यर्थ नष्ट करना बुद्धिमानी का काम नहीं ?

   महर्षि दयानन्द का उत्तर - जो तुम पदार्थविद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता। जहाँ होम होता है वहाँ से दूर देश (स्थान) में स्थित पुरूष के नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है। इतने ही से समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके फैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है। केसर, कस्तूरी, सुगन्धित पुष्प और अतर आदि के सुगन्ध में वह सामर्थ्य नहीं है कि गृहस्थ वायु को बाहर निकालकर शुद्ध वायु को प्रवेश करा सके क्योंकि उसमें भेदक शक्ति नहीं है और अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धि युक्त पदार्थों को छिन्न-भिन्न तथा हल्का करके बाहर निकाल कर पवित्र वायु को प्रवेश करा देता है।

(प्रश्न) तो मन्त्र पढ़ के होम करने का क्या प्रयोजन है ?

(उत्तर) मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जायें और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें। वेद पुस्तकों का पठन पाठन तथा रक्षा भी होंवे।

(प्रश्न) क्या उस होम करने के बिना पाप होता है ?

(उत्तर) हाँ, क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त करता है उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। इसलिये उस

पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे अधिक, वायु और जल में फैलाना चाहिये । जितना घृत एवं सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है उतने द्रव्य के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है ।

(प्रश्न) प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुति करे और एक-एक आहुति का कितना परिमाण है ?

(उत्तर) प्रत्येक मनुष्य को सोलह - सोहल आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिये, जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है। इसीलिये आर्यवर शिरोमणि महाशय, ऋषि, महर्षि, राजे, महाराजे लोग बहुत सा होत करते और कराते थे। जब तक इस होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त्त देश रोगों से रहित तथा सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाये ।

(सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास)

4. (क) सुगन्धित, पुष्टिकारक-मिष्टगुणयुक्त और रोगनाशक औषधियों को परस्पर शोधन, संस्कार एवं यथायोग्य मिला के अग्नि में युक्ति पूर्वक जो होम किया जाता है, वह वायु और वृष्टिजल की शुद्धि करने वाला होता है ।

(ख) यज्ञ से जो भाफ वाष्य उठता है वह वायु और वृष्टि के जल को निर्दोष तथा सुगन्धित करके सब जगत् को सुख करता है ।

(ग) जनता नाम जो मनुष्यों का समूह है उसी के सुख के लिये यज्ञ होता है और संस्कार किये द्रव्यों का होम करने वाला जो विद्वान् मनुष्य है वह भी आनन्द को प्राप्त होता है क्योंकि जो मनुष्य जगत् का जितना उपकार करेगा उसको उतना ही ईश्वर की व्यवस्था से सुख प्राप्त होगा । इसलिये यज्ञ का अर्थवाद यह है कि अनर्थ दोषों को हटा के जगत् में आनन्द को बढ़ाता है ।

(घ) ईश्वर ने मनुष्यों को यज्ञ करने की आज्ञा दी है, इसको जो नहीं करता वह पापी होके दुःख का भागी होता है ।

(-ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका - वेदविषयविचार)

5. परमेश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यों । यह अग्नि तुम्हारा दूत है क्योंकि हवन किये हुए परमाणु रूप पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुंचाता और उत्तम उत्तम भोगों की प्राप्ति का हेतु है ।

(ऋग्वेद 01/12/04 का भावार्थ)

6. जब अग्नि में सुगन्धि आदि पदार्थों का हवन होता है तभी वह यज्ञ वायु

आदि पदार्थों को शुद्ध तथा शरीर और औषधि आदि की रक्षा करके अनेक प्रकार के रसों को उत्पन्न करता है। उन शुद्ध पदार्थों के भोग से प्राणियों के विद्या, ज्ञान और बल की वृद्धि भी होती है ।

(ऋग्वेद 01/13/02 का भावार्थ)

7. मधुजिव्हं हविष्कृतम् ।। ऋग्वेद 01/13/03 का पदार्थ - होम करने योग्य पदार्थों से प्रदीप्त किया जाता है और जिस की सात जीभे हैं -

(१) काली-सुफेद आदि रंग का प्रकाश करनेवाली

(२) कराली - सहने में कठिन ।

(३) मनोजवा - मन के समान वेग वाली ।

(४) सुलोहिता - जिनका उत्तम रक्त वर्ण है ।

(५) सुधम्रवर्णा - जिसका सुन्दर धुमला सा वर्ण है ।

(६) स्फुल्लिंगिनी - जिससे बहुत से चिनगे उठते हैं ।

(७) विश्वरूपी - जिसका सब रूप है ।

8. विद्वान् लोग अग्नि में जो घृत आदि पदार्थ छोड़ते हैं वे अन्तरिक्ष को प्राप्त हो कर वहाँ के ठहरे हुए जल को शुद्ध करते हैं, वह शुद्ध हुआ जल सुगंन्धि आदि गुणों से सब पदार्थों का आच्छादन करके सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है ।

(ऋग्वेद 01/13/05 का भावार्थ)

9. जो यज्ञ के घूम से शोध हुए पवन हैं वे अच्छे राज्य के करानेवाले होकर रोग आदि दोषों का नाश करते हैं ।

(ऋग्वेद 01/19/05 काा भावार्थ)

10. जो मनुष्य अग्निहोत्र आदि काम से वायु और वर्षा की शुद्धि द्वारा सब वस्तुओं को पवित्र करता है वह सब प्राणियों को सुख देता है ।

(ऋग्वेद 01/93/08 का भावार्थ)

11. जब विद्वान् जन सुगन्धादि पदार्थों के होम से जीवात्मा और जलों की शुद्धि कराते हैं तब प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ।

(ऋग्वेद 01/181/01 का भावार्थ)

12. यज्ञ के लिये घृत आदि पदार्थ चाहने वाले मनुष्य को गाय आदि पशु रखने चाहिये और घृतादि अच्छे पदार्थों से अग्निहोत्र से ले कर उत्तम-उत्तम यज्ञों से जल और पवन की शुद्धि कर सब प्राणियों को सुख उत्पन्न करना चाहिये ।

(यजुर्वेद 06/11 का भावार्थ)

13. जो यज्ञ से शुद्ध किये हुए अन्न, जल और पवन और पदार्थ हैं वे सब की शुद्धि, बल, पराक्रम एवं दृढ़ दीर्घ आयु के लिये समर्थ होते हैं इससे सब मनुष्यों को यज्ञ कर्म का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये।

(यजुर्वेद 01/20 का भावार्थ)

14. वेदमन्त्रों के बिना पढ़े और उनके अर्थों के बिना जाने यज्ञ का अनुष्ठान और सुखकारी अन्न, जल वायु आदि पदार्थ हैं उनको शुद्ध नहीं कर सकते।

(यजुर्वेद 01/27 का भावार्थ)

15. यज्ञ वर्षा के शुद्ध जल से सब औषधियों को पुष्ट करता है।

(यजुर्वेद 02/01 का भावार्थ)

16. जो मनुष्य यज्ञ से शुद्ध किये जल औषधियों, पवन, अन्न, पत्र, पुष्प, फल, रस, कन्द अर्थात् अरबी, आलु, कसेरू, रतालु, तथा शकर कन्द आदि पदार्थों का भोजन करते है वे नीरोग होकर बुद्धि बल आरोग्यपन और आयुर्दा वाले होते हैं।

(यजुर्वेद 22/23 का भावार्थ)

परिशिष्ट 2

रोगानुसार हवन धूप

1. **अतिसार (दस्त) नाशक** - आंवला, बालहरड, जायफल, इन्द्रजौ, दालचीनी सभी का चूर्ण मिलाकर हवन करें, थोड़ी मात्रा में खिलायें भी।

2. **अमृतहवि** - (1) सत्व अजवायन 25 ग्राम (2) कपूर 25 ग्राम (3) पिपरमेण्ट 25 ग्राम (4) इलायची तेल 10 ग्राम (5) दालचीनी तेल 10 ग्राम (6) लौंग तेल 10 ग्राम (7) बादाम तेल 10 ग्राम - सबका मिश्रण तैयार कर 100 ग्राम गोघृत मिलाकर हवन करें। इससे तीन आचमन भी करें।

खांसी, जुकाम, अपच, दस्त, कै, हैजा, दांत दर्द, विषनाशक

3. **अर्श (बवासीर) नाशक** - (1) एक बन्द कमरे में 2 ईंटों के बीच किसी प्याले या तवे पर जलते हुए कोयला अथवा कन्डे का अंगार रखें उसपर सत्यानाशी के बीज 10 ग्राम तथा गुग्गल 10 ग्राम डालकर धूनी दें और बवासीर के रोगी ईंटों पर पैर रखकर बैठ जावे मस्सों पर सीधा धूआं लगने दें। एक सप्ताह में मस्से गिर जायेगें।

अथवा - नारियल की जटाओं को कपूर से जला लें उसमें नागकेसर कुछ नग डाल दें। राख बन जाने पर समान भाग बूरा मिलाकर 10

ग्राम मिश्रण जल के साथ सेवन करें।

4. **अश्मरी (पथरी) नाशक** - देवदार, नीमपत्ते, सत्यानाशी, पाशाणभेद यवक्षार कुलधी सभी समान भाग मिलाकर आग में धूनी दें, राख को 6 ग्राम शहद के साथ सेवन करें।

5. **कब्ज निवारक** - सनाय की पत्ती 100 ग्राम, सौंफ 100 ग्राम, मिश्री 400 ग्राम तीनों का चूर्ण 50 ग्राम से हवन करें तथा 6 ग्राम रात्रि में जल के साथ सेवन करें।

5.1 **खांसी** - पीपलपत्ते, बांसपत्ते, केलापत्ते और अपामार्ग (चिरचिटा) पत्ते सभी समानभाग हवन में जलायें, भस्म (राख) को कपड़ा से छान कर रख लें। एक ग्राम भस्म शहद में मिलाकर चटाएँ।

6. **घुटने का दर्द नाशक** - गुग्गल 100 ग्राम तथा गुड़ 200 ग्राम - दोनों को मिलाकर 10–20 ग्राम अंगारे पर धूनी दें व प्रातः- सायं 2–2 ग्राम घी के साथ सेवन करें।

संधिवात, गठिया, रींगनबाय

7. **चर्मरोगनाशक** - शीतल (कबाब) चीनी, चोपचीनी, मेथीबीज, दारूहल्दी, चिरायता, कपूर, नीमपत्ते, चमेलीपते, चक्रमर्द (चकोंड़) बीज इन सभी का समानभाग चूर्ण कर चालमोगरा का तेल मिलाकर अंगारे पर धूनी दें व प्रभावित अंग में धुंआ लगने दें तथा चालमोगरा तेल का आचमन करें।

8. **दमानाशक** - करील (करी, किरिड, टेंटा) की समिधा (लकड़ी) को कपूर से जलाकर शहद व अजवायन खुरासानी थोड़ी मात्रा में डालें, राख (भस्म) 01 ग्राम पान के साथ कुछ दिन खायें।

9. **दिमागी कफ निस्सारक** - कायफल 20 ग्राम, कालीमिर्च 10 ग्राम, इलायची 10 ग्राम, कपूर 5 ग्राम, नौशादर 2 ग्राम सबको कूट-पीसकर बारीक कर लें थोड़ी मात्रा अंगारे पर दें और धुआँ नाक से अन्दर खीचें।

10. **निद्राकारक** - जायफल 2 ग्राम, पीपलमूल 50 ग्राम, सर्पगंधा 25 ग्राम तीनों के चूर्ण में गोघृत 50 ग्राम तथा गुड़ 50 ग्राम मिलाकर अंगारे पर 5 ग्राम डालकर धूनि दें तथा 5 ग्राम मिश्रित चूर्ण खायें कुछ दिन प्रयोग करें।

11. **पीलिया (पाण्डु) नाशक** - सफेदचन्दन चूर्ण 100 ग्राम, कुटकी चूर्ण 50 ग्राम, आमा हल्दी चूर्ण 100 ग्राम, इन तीनों को शहद में मिलाकर

10 ग्राम मात्रा अंगारे पर प्रातः सायं धूनी दें तथा 8–10 ग्राम खिलायें।

12. **बुद्धिवर्धक** - गिलोय, अपामार्ग पञ्चाङ्ग, शंखाहुली पञ्चाङ्ग (शंखपुश्पी) वायविडङ्ग, बच, बालहर्रा, मीठाकूठ, शतावर, मालकंगनी बीज, कपूर कचरी, ब्राह्मी, मुलहठी इन सभी को समानभाग लें सबको कूट पीसकर चूर्ण बनालें सभी के वजन के बराबर मिश्री भी कूटकर मिला लें। घी अथवा शहद के साथ हवन करें तथा 5–6 ग्रामचूर्ण घी या शहद में मिलाकर खायें।
13. **रक्तचाप (उच्च) नियंत्रक** - सर्पगंधा एवं जटामासी को कुट पीसकर कपड़ा में छान लें उसमें शिलाजीत एवं शहद कुछ मात्रा में मिलाकर अंगारे पर धूनी दें तथा एक डेढ़ ग्राम दवा पानी के साथ खायें भी।
14. **लकवा (पक्षाघात, अधरंग) नाशक** - बच 50 ग्राम, सोठ 50 ग्राम, कालाजीरा 50 ग्राम, सनबीज 20 ग्राम, छोटी हरड़ 20 ग्राम, जायफल 10 ग्राम, सबको कुट पीस कर चूर्ण बनालें, उसमें पुराना गोघृत 100 ग्राम तथा शहद 50 ग्राम मिलाकर अंगारे पर 5–10 ग्राम की धूनी करें एवं दो - दो ग्राम प्रातः सायं खायें भी।
15. **कामवासना शामक** - गौघृत में तिल, उड़द तथा जटामांसी को डालकर उसकी आहुति से जो रंग पैदा हो उस रंग को एकटक दृष्टि से देखता रहे तो कामवासनाएँ शान्त होंगी।
16. **क्रोध निवारक** - गौघृत में चावल तथा जौ को मिलाकर आहुति देने से जो रंग बने उसे अपलक नजरों से देखते रहने पर क्रोध की वृत्तियाँ बदल जायेंगी।
17. **लोभनाशक** - गौघृत में हरेमूंग को मिलाकर आहुति देने से जो रंग पैदा हों उसे अपलक नयनों से निहारते रहने पर लोभ की वृत्ति मिटती है।
18. **भयनिवारक** - छाया में सुखाये हुए दूब (दुर्वा) तथा कुशाघास को शहद मिले हुए घी में डूबो-डूबो कर भयनिवारक (रूद्र) मन्त्र से एक माला प्रतिदिन यज्ञ करें।
19. **सौभाग्यवर्धक** - गूग्गल 500 ग्राम में 125 ग्राम सफेद चंदन चूर्ण तथा गौघृत 100 ग्राम मिलाकर 5–6 ग्राम की 100 गोलियाँ बनाकर एक माला गायत्री मन्त्र से हवन करें।

यज्ञोपैथी का साप्ताहिक कार्यक्रम

रविवार (आदित्य, सूर्य वार) : सूर्य सबको ऊर्जा (शक्ति) प्रदान करते हैं। सूर्य के प्रभाव से पृथ्वी पर अन्न की उत्पत्ति होती है। वर्षा भी सूर्य के प्रभाव से ही होती है। "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" इसीलिये रविवार को सर्वरोगनाशक हवन करना चाहिये जो इसी पुस्तक के पृष्ठ 39 से 49 तक में हैं।

सोमवार (चन्द्रवार) : चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह है, इसका स्त्री-पुरूष के चरित्र, स्वास्थ्य और आयु पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

"चन्द्रमा मनोभूत्वा हृदयं प्राविशत्"

– चन्द्रमा, मन बनकर हृदय में प्रतिष्ठित है

अतएव चन्द्रवार (सोमवार) को हृदयरोग निवारक यज्ञ कर सकते हैं - इसी पुस्तक के पृष्ठ 50 से 54 तक में मन्त्रों और औषधियों का उल्लेख है। इन मन्त्रों में पीलिया (हलीमक - पाण्डु - कामला) रोग भी दूर होने का संकेत है।

हृदयशूल नाशक सामग्री

(1) अश्वगन्धा (2) काकमाची (मकोय) (3) काहू (4) गेहूँ (5) पोहकूमूल (6) चिरायता (7) कुटकी (8) कुलची (9) पिप्पली (10) मसूर (11) मुलहठी

पीलिया नाशक हवन सामग्री

(1) अर्क {आकड़ा, अकि, रुई (म.)} (2) मीठाकूठ (3) कुटकी (4) पुर्नवा (5) वासा (अडूसा) (6) इन्द्रायण (7) कालमेघ (8) दारुहल्दी (9) बावची (10) पिप्पली (11) जामुन

मंगलवार (भौमवार) : चन्द्रमा के बाद मंगल, पृथ्वी के समीप दूसरा ग्रह है। इसे भूमिपुत्र भी कहा जाता है। लाल वर्ण होने पे इसे रक्त से सम्बन्धित मानते है अतएव मंगलवार को रक्तजरोग निवारक हवन का उल्लेख इसी पुस्तक के 55 से 60 तक में है।

बुधवार : सौर मण्डल में बुध ग्रह सूर्य के अधिक समीप है। यह अधिक उज्ज्वल और हरितवर्ण की आभा लिए हुए है। बुध मनुष्य के व्यक्तित्व, विद्या और स्वर आदि को प्रभावित करता है। बुध को रोहिणीसुत या चन्द्रपुत्र भी कहते हैं। बुध का सम्बन्ध रोहिणी से होने के कारण अस्थियों को पूर्णता प्रदान करने वाला माना गया है इसलिये बुधवार को अस्थिजन्य रोग निवारक हवन कर सकते हैं। इसी पुस्तक के 61 से 64 तक मन्त्र दिये गये हैं। नागकेसर, पोहकरमूल, चावल (अक्षत) मुक्ताफल, शहद व पंचगव्य से हवन करें।

अस्थिजन्य रोग निवारक धूप

1. लाक्षा (रोहिणी, अरुन्धती, भद्रा, शतघ्नी) एवं हड़जोड़ (अस्थिश्रृंखला, वज्रवल्ली) छाया में सुखाकर और मिलाकर कुछ मात्रा को आग में डालकर धुआ ग्रहण करें।

2. नागकेसर, पोहकरमूल, चावल (अक्षत), मुक्ताफल, गोरोचन, शहद, प्रियंगुपुष्प, मूंग, दूर्वा, बबूल के पत्ते आदि के चूर्ण में पंचगव्य मिलाकर धूनी करें।

गुरूवार (बृहस्पतिवार) : बृहस्पति को गुरू कहा जाता है। विवेकी और विद्वान बनाने का काम इन्हीं का है। बृहस्पति का प्रभाव यकृत पर भी पड़ता है। अतएव इस दिन बुद्धिवर्धक मानस रोग निवारक यज्ञ करना चाहिये। पीलिया एवं कैंसर नाशक यज्ञ भी कर सकते हैं। इसी पुस्तक के पृष्ठ 65 से 74 तक मानस रोग निवारक उपाय लिखे हैं। बुद्धिवर्धक औषधियों का वर्णन इसी पुस्तक के पृष्ठ 148 में देखें। पीली सरसों, मुलहठी, सुगन्धबाला, मालतीपुष्प व पत्ते से हवन करें।

शुक्रवार : सौर मण्डल में शुक्र ग्रह सूर्य के बाद अन्य ग्रहों से अधिक प्रकाशयुक्त है। यह आठ महीने में सूर्य की परिक्रमा पूरी कर लेता है। शुक्र का प्रभाव मनुष्य को तेजस्वी बनाता है तथा शक्ति प्रदान करता है। बल पौरूष की वृद्धि के लिये इस दिन क्षयरोग निवारक यज्ञ करना चाहिये। इसी पुस्तक में पृष्ठ 75 से 80 में मन्त्र और औषधियों का उल्लेख है। श्वेतकमल, मनःशिल, सुगन्धबाला, इलायची, पोहकरमूल, केसर से हवन करें।

शनिवार : शनिवार को स्त्रीरोग निवारक हवन करना चाहिये। इसी पुस्तक के पृष्ठ 81 से 91 तक मन्त्र और औषधि का वर्णन है।